संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०९
जनवरी २००२
पौष मास
विक्रम.सं. २०५८

हिन्दी
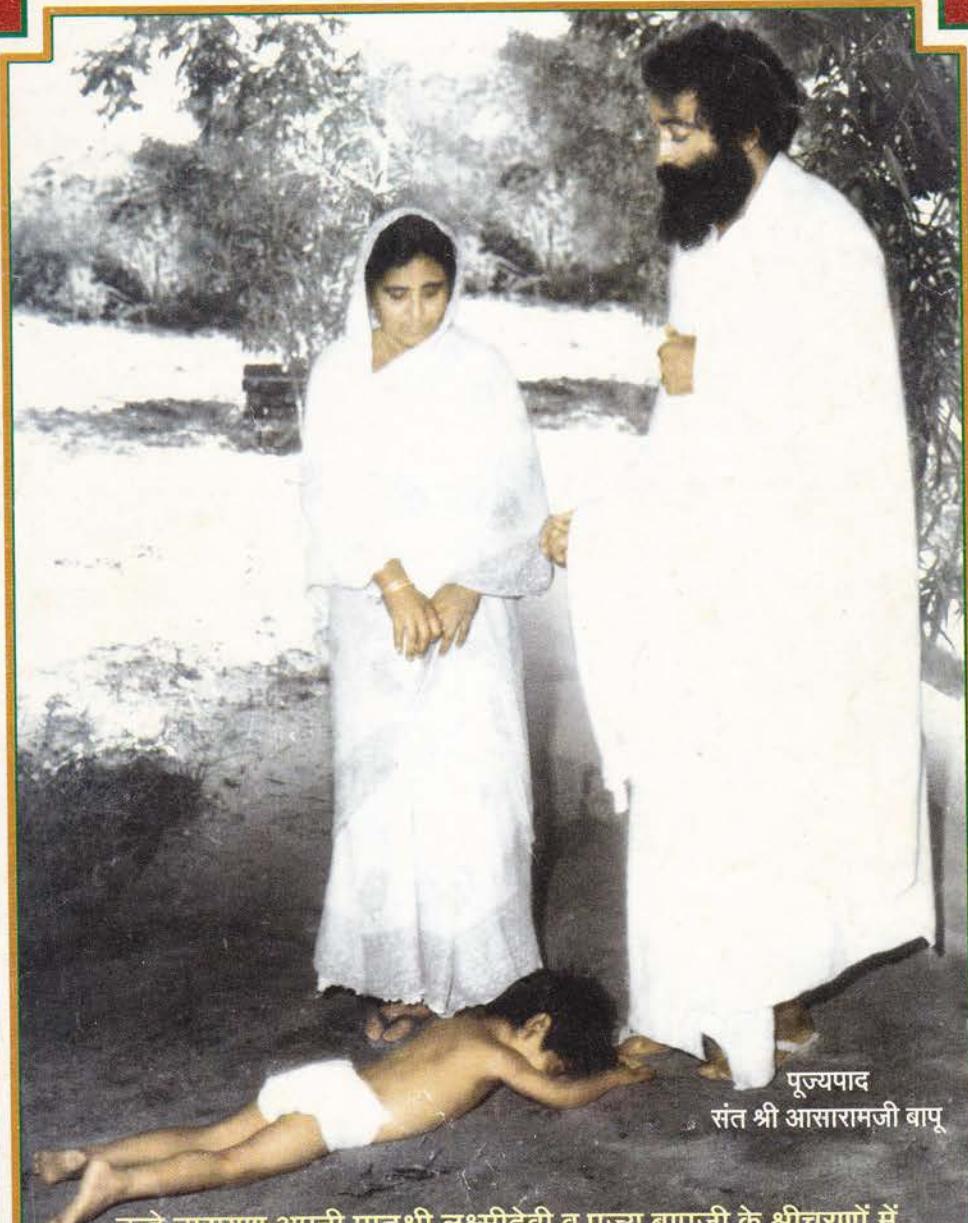
पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

नन्हे नारायण अपनी मातुश्री लक्ष्मीदेवी व पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में
जगत उद्धारणी कृपा पा रहे हैं।

सद्गुरु के चरणों में हमने जिस दिन से शीश झुकाया है।
उस दिन से मेरा जन्म हुआ और सफल हुई यह काया है॥

सूरत में आयोजित विद्यार्थी उत्थान शिविर में पूज्य बापूजी से जीवन के सर्वांगीण विकास की कुंजियाँ प्राप्त कर यौगिक क्रियाएँ सीखते हुए देश के नौनिहाल।
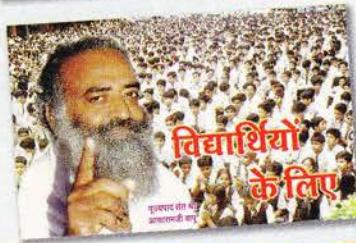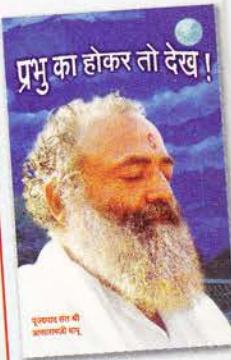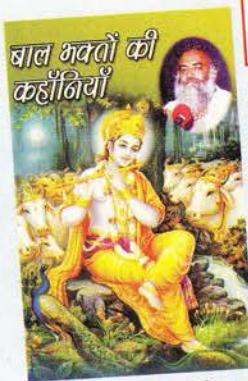
॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०९
९ जनवरी २००२
पौष मास, विक्रम संवत् २०५८

सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रु. ६.००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-
नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-
विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
website : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ एवं शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० एवं रात्रि १०.०० से १०.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

अब तो अलख जग जाने दो...

गुरुदेव कृपा कर दो मुझ पर ।
मुझे अपनी शरण में आने दो ॥
नश्वरता से मुँह मोड़ सकूँ ।
शाश्वत की शरण में आने दो ॥

राग द्वेष भय हट जाए ।
मम चित्त अचिन्त्य हो जाए ॥
वह जान सके पहिचान सके ।
वह आत्मतत्त्व पा जाने दो ॥

मैं बूँद प्रभो तुम हो सागर ।
मैं रश्मि प्रभो तुम प्रभाकर ॥
पूरण ब्रह्म प्रकाशी गुरु ।
स्पर्श चरणरज पाने दो ॥

न हो माया से विचलित मन ।
यह देह भ्रमित और मिथ्या तन ॥
क्षणभंगुर से नाता काटो ।
और परम तत्त्व मिल जाने दो ॥

निर्द्वन्द निःसंग असंग बनूँ ।
सम सुख दुःख मान प्रसन्न बनूँ ॥
चौरासी में आना न पड़े ।
वह आत्म तत्त्व महकाने दो ॥

गुरु क्षण क्षण बीता जाए है ।
मनुआ कुछ ना कर पाए है ॥
भक्तिभाव की मानुष तन में ।
अब तो अलख जग जाने दो ॥

पातकी मूर्ख अल्पज्ञ रहा ।
यह जीवन व्यर्थ गँवाय रहा ॥
जीवन के बाकी साँसों को ।
प्रभु की लय में बह जाने दो ॥

आसुरी, राक्षसी और मोहिनी भाव

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है :

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥

'वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं ।'

(गीता : ९.१२)

आसुरी भाव, दैत्य भाव और मोहिनी भाव- ऐसे तीन प्रकार के भाववाले लोग भगवान से विमुख होकर सारे किये-कराये पर पानी फिरा देते हैं। उनकी जो कुछ भी अच्छी प्रवृत्ति होती है वह भी अंत में नष्ट हो जाती है क्योंकि अच्छी प्रवृत्ति का फल भी वे नश्वर प्रकृति की चीजें चाहते हैं।

मानों, यज्ञ भी कर लेते हैं, दान भी कर लेते हैं, पुण्य कर्म भी कर लेते हैं लेकिन दान-पुण्यादि सत्कर्म का फल वे स्वर्ग चाहते हैं और स्वर्ग का भोग भोगकर उनके पुण्य नष्ट हो जाते हैं । अच्छे कर्म करके वाहवाही चाहते हैं तो अच्छे कर्म हुए, वाहवाही मिली... बस, वाहवाही भोगकर समय खराब हो जाता है। हाथ में मिला क्या ?

बुरे कर्म करनेवाले तो अपना सत्यानाश करते ही हैं लेकिन अच्छे कर्म करनेवाले ज्ञानविहीन लोग भी आसुरी प्रकृति का आश्रय लेते हैं। मोघाशा... भगवान से विमुख होना यह 'मोघ' है। स्वर्ग को पाया, ऋद्धि-सिद्धि को पाया, प्रसिद्धि को पाया लेकिन आखिर क्या ?

मैं हनुमानजी से स्नेह करता हूँ, उनको प्रणाम करता हूँ। उनके पास इतनी योग्यताएँ होने के बावजूद वे उन योग्यताओं में रुके नहीं। आत्मा-परमात्मा को पाने के लिए श्रीरामजी की सेवा में लग गये। अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आज्ञा में रहकर परमात्मतत्त्व को पा लिया।

ईश्वर के सिवाय कहीं भी मन लगाया तो अंत में रोना ही पड़ेगा। **मोघाशा मोघकर्माणो...** भगवान से विमुख आशा एवं भगवान से विमुख कर्म जो चाहते हैं ऐसे लोग अपना जीवन, समय और ज्ञान व्यर्थ कर देते हैं।

लोग दुनियाभर के ज्ञान से अपनी बुद्धि को संपन्न कर दें, धन के भंडार कर लें, स्वदेश में धन्य हो लें, विदेश में सम्मानित हो लें लेकिन गुरुतत्त्व अर्थात् आत्मा-परमात्मा में प्रीति नहीं हुई तो आखिर क्या ? जो भगवान से विमुख हैं वे यज्ञ कर लें, दान कर लें, तप कर लें लेकिन उसका फल यदि सत्यस्वरूप ईश्वर को नहीं चाहते तो असत् भोग चाहेंगे और असत् भोग समय लेकर नष्ट हो जाते हैं। तो आखिर मिला क्या ? मिली समय की बरबादी, वासनाओं की गुलामी, दीनता-हीनता। स्वार्थ से, कामना की पूर्ति से प्रेरित होकर जो कर्म करते हैं, 'भले किसीकी हानि हो तो हो लेकिन मेरा यह काम होना ही चाहिए...' ऐसा सोचकर उस काम के पीछे अपना ज्ञान, अपनी क्रियाशक्ति और अपनी भावना लगा देते हैं, ऐसे स्वभाववाले लोगों को ही आसुरी प्रकृति के लोग कहा गया है।

आसुरी प्रकृति के लोग अर्थात् ऐसे लोग नहीं जो अनपढ़ होते हैं, अश्रद्धालु होते हैं या मूर्ख होते हैं। नहीं... उनमें योग्यताएँ तो बहुत सारी होती हैं लेकिन ईश्वर-प्राप्ति के सिवाय की चीजों में ही उनकी योग्यताएँ लगती हैं। मिथ्या सुख की प्राप्ति में, मिथ्या देह के आराम में ही उनकी सारी योग्यताएँ लगी रहती हैं। आसुरी भाव का आश्रय लेनेवाला व्यक्ति अपनी कामनापूर्ति के लिए सब कुछ करने को तैयार हो जायेगा लेकिन ईश्वर-प्राप्ति की कामना नहीं करेगा।

दूसरे होते हैं **राक्षसी** भाववाले व्यक्ति। अपने स्वार्थ की पूर्ति में यदि कोई विघ्न डालेगा तो उस पर कोपायमान हो जायेंगे। 'अपना स्वार्थ सिद्ध हो फिर दूसरे चाहे भूखे रहें चाहे मरें, चाहे कुछ भी हो लेकिन मेरी लौकिक कामना सफल हो...' ऐसी वृत्तिवाले लोग राक्षसी भाव का आश्रय लेते हैं।

तीसरे होते हैं **मोहिनी** भाव का आश्रय लेनेवाले। मोहिनी भाव उसे कहते हैं कि उड़ते हुए पक्षी को गोली मार दी, बैठे हुए किसी निर्दोष आदमी को ठोकर मार दी। कोई सोया है और उसके कान में सलाई भोंक दी। किसीसे कोई लाभ की इच्छा नहीं, फिर भी ऐसे ही किसीको सताते रहना इसको बोलते हैं मोहिनी भाव।

आसुरी, राक्षसी और मोहिनी भाव का आश्रय लेनेवाले लोग सम्मोह, लोभ और मूर्खता के कारण अपना मनुष्य-जीवन व्यर्थ गँवा देते हैं। जैसे बंदर को नारियल मिले तो व्यर्थ है, अंधे आदमी को हीरा मिले तो व्यर्थ है और अपवित्र, निंदक, क्रूर एवं धोखेबाज को गुरुदीक्षा मिले तो व्यर्थ है। **जो सुधरना तो नहीं चाहता वरन् गुरु के नाम को भुनाना चाहता है उसकी गुरुदीक्षा व्यर्थ है।**

आगे के श्लोक में भगवान कहते हैं :

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

'परन्तु हे पृथानंदन ! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्मा लोग मुझको संपूर्ण प्राणियों का सनातन कारण और अविनाशी अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त होकर निरंतर भजते हैं।' **(गीताः ९.१३)**

आसुरी प्रकृति में तमस, राक्षसी प्रकृति में रजस उन्मुख तमस है और मोहिनी प्रकृति में घोर तमस है लेकिन महात्मा लोग इस रजस-तमस-घोर तमस आदि से ऊपर दैवी प्रकृति के होते हैं। देव कहा जाता है परमात्मा को। उस परमात्मदेव के स्वाभाविक सद्गुण उनमें रहते हैं। जैसे, पानी का स्वभाव तरल है, अग्नि का स्वभाव उष्ण है, बर्फ का स्वभाव शीतल है ऐसे ही भगवान के जो स्वाभाविक गुण हैं-निर्भयता, सात्त्विकता, ज्ञान में स्थिति, आचार्य की उपासना, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि... ये दैवी प्रकृति के गुण हैं। महात्मा इस दैवी प्रकृति का आश्रय लेते हैं।

२६ गुण हैं दैवी प्रकृति के। इन २६ गुणों में जितनी-जितनी गहरी स्थिति होगी, उतना-उतना मनुष्य महात्मा के जैसे स्वभाव से संपन्न होता जायेगा। किंतु जितना-जितना वह इन तीन गुणों में... आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति में होगा उतना-उतना वह क्रूर स्वभाव का होगा।

हालाँकि महात्मा की नज़र तो क्रूर स्वभाववाले की गहराई में जो चैतन्य है और शुभ स्वभाववाले की गहराई में जो चैतन्य है, वहाँ होती है। साधारण व्यक्ति तो किसीके गुण-दोष पर नज़र रखता है लेकिन महापुरुष लोग गुण-दोष को मिथ्या मानकर, गुण-दोष जिससे प्रकाशित होते हैं, जहाँ से सत्ता-स्फूर्ति पाते हैं उस निर्गुण नारायण को अपने अंतःकरण एवं औरों के अंतःकरण में देखते हैं। ऐसे महात्मा लोग सार बातें समझने में कुशल होते हैं।

जो दैवी प्रकृति का आश्रय नहीं लेते अर्थात् सात्त्विक आहार नहीं लेते, सात्त्विक व्यवहार नहीं करते, सात्त्विक स्थानों पर नहीं जाते, सात्त्विक वातावरण में जीना पसंद नहीं करते बल्कि जो आया सो खा लिया, जो आया सो पी लिया, वे अच्छे कर्म भी करेंगे लेकिन उनकी बुद्धि ईश्वर के अनुभव तक नहीं पहुँचेगी।

कोई यदि राजा को रिझाना चाहे लेकिन इसके लिए किसी छोटे अमलदार को रिझाने लगे तो जरूरी नहीं कि सभी अमलदार रीझ जायें और राजा भी रीझ जाय। लेकिन वह एक राजा को अगर राजी कर दे तो सभी अमलदार रीझ जायेंगे। यदि वह राजा से एक हो गया तो सारे अमलदार-अधिकारी-मंत्री उसकी प्रसन्नता चाहेंगे। इसी प्रकार दैवी प्रकृति का आश्रय लेनेवाले महात्मा लोग राजाओं के राजा उस परब्रह्म परमात्मा को आत्मसात् कर लेते हैं। फिर ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ, देवी-देवता, यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि एवं भूत-प्रेत, आसुरी प्रकृतिवाले, तामसी प्रकृतिवाले, मोहिनी प्रकृतिवाले सभी-के-सभी लोग ऐसे महात्मा पुरुष को चाहते हैं एवं उनकी बात मानते हैं।

भगवान को तो कोई मानता है कोई नहीं मानता है लेकिन भगवान के दैवी स्वभाव को आत्मसात् किये हुए महात्मा को बहुत लोग मानते हैं। जैसे, हिरण्यकशिपु भगवान का विरोधी था लेकिन नारदजी आये तो उसने उठकर नारदजी का सत्कार किया। कंस भगवान का विरोधी था लेकिन नारदजी की आज्ञा में चला। कुछ लोग भगवान को मानते हैं तो कुछ लोग अल्लाह को लेकिन जो दैवी प्रकृति का आश्रय लेकर ब्रह्मज्ञान को पा लेते हैं उनको अल्लाह को माननेवाले भी मानते हैं, भगवान को माननेवाले भी मानते हैं और नास्तिक लोग भी उन महात्मा के संपर्क में आकर उनके प्रति आदरभाव रखते हैं। ये दैवी गुण इतना महान बना देते हैं!

ईश्वर का आश्रय लेना हो तो ईश्वर के दैवी गुणों का आश्रय लो। दैवी गुणों का आश्रय लेने से चित्त के दुर्गुण क्षीण होते जाते हैं एवं भगवान के दिव्य गुण प्रगट होते जाते हैं जिससे दिव्य सुख उभरने लगता है। ज्यों-ज्यों दिव्य गुण एवं दिव्य सुख उभरेगा, त्यों-त्यों संसार की चोटें आपके चित्त पर कम असर करेंगी।

ऐसा नहीं कि परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया तो आपकी कोई निंदा नहीं करेगा, आपका कोई विरोध नहीं करेगा, आपके सब दिन सुखद हो जायेंगे। नहीं... परमात्म-साक्षात्कार हो जाय फिर भी दुःख तो आयेंगे ही। भगवान राम जैसे राम को चौदह वर्ष वनवास मिला, युधिष्ठिर को बारह साल का वनवास एवं एक वर्ष का अज्ञातवास मिला। बुद्ध हों या महावीर, कबीर हों या नानकदेव, रमण महर्षि हों या रामकृष्ण, रामतीर्थ हों या पूज्य लीलाशाहजी बापू... विघ्न-बाधाएँ तो सभी देहधारियों के जीवन में आती ही हैं लेकिन विघ्न-बाधाओं का प्रभाव जहाँ पहुँच नहीं सकता, उस आत्मसुख में वे महापुरुष इतने सराबोर होते हैं कि जीते-जी इन विघ्न-बाधाओं में होते हुए भी वे मुक्तात्मा होते हैं।

जैसे, जंगल में आग लग जाने पर सयाने पशु सरोवर में खड़े हो जाते हैं तो जंगल की आग उन्हें नहीं जला सकती। ऐसे ही जो महापुरुष आत्मसरोवर में आने की कला जान लेते हैं, वे संसार की तपन के समय अपने आत्मसुख के विचार कर तपन के प्रभाव से परे हो जाते हैं।

*
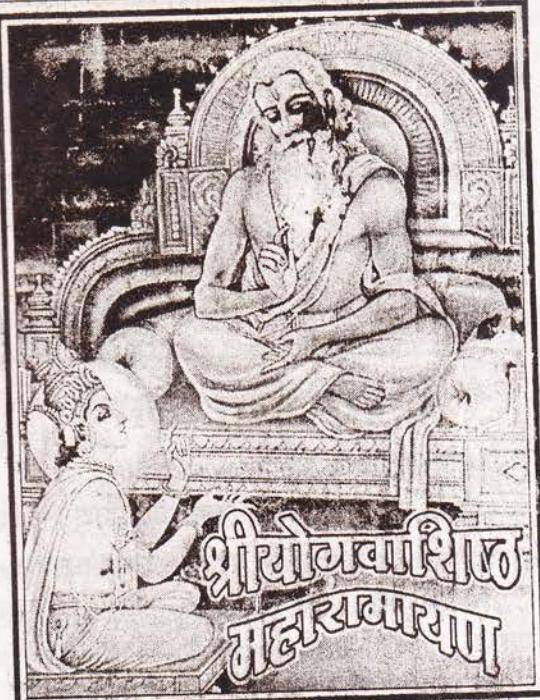
सबसे ऊँचा है आत्मपद

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

'रंक को त्रिलोकी का राज्य मिलने से जो आनंद आता है, उससे कई गुना अधिक आनंद आत्मानंद का अनुभव करनेवाले आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष को होता है।'

श्री वशिष्ठजी महाराज श्रोताओं का ख्याल करके यह बात कह रहे हैं क्योंकि श्रोता जैसी भाषा समझे उसी भाषा में महापुरुषों को कहना पड़ता है। वरना रंक को त्रिलोकी का राज्य मिलेगा तो जो आनंद आयेगा वह इंद्रियगत आनंद होगा, मनोगत आनंद होगा लेकिन ज्ञानवान का आनंद इन सबसे परे होता है। किंतु समझनेवाले इंद्रियों में जीते हैं इसलिए उन्हें कहते हैं कि त्रिलोकी का राज्य मिलने से कंगाल को जो सुख होता है वैसा सुख ज्ञानी को साक्षात्कार से मिलता है।

साक्षात्कार के आनंद से त्रिलोकी को पाने का आनंद बहुत तुच्छ है । इंद्रपद बहुत ऊँचा है लेकिन ज्ञानवान के सुख के आगे वह भी तुच्छ है। इसीलिए शास्त्र ने कहा है :

यत्पदं प्रेप्सवो दीना शक्रादयाः सर्व देवता।
अहो तत्र स्थितो योगी हर्षं न उपगच्छति ॥

(अष्टावक्र गीता)

जिस पद को पाये बिना इंद्र आदि सब देवता भी अपने को कंगाल मानते हैं उस आत्मपद को पाकर योगी अहंकार नहीं करता है। **अहो तत्र स्थितो योगी...**

ज्ञानवान को इस बात का अहंकार नहीं होता है कि 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ... मैं साक्षात्कारी हूँ... मैं इस दुनिया में अकेला ही हूँ, दूसरा कोई मेरी बराबरी का नहीं है... मैंने सर्वोपरि आत्म-परमात्म पद पाया है।' महापुरुष अगर कभी ऐसा कह भी देते हैं तो उनकी मौज है। सामनेवाले के मंगल के लिए कह देते हैं। जैसे, वशिष्ठजी महाराज ने कह दिया :

''हे रामजी ! शिष्य में जो सद्गुण यम, नियम, संयम, सत्यप्रियता, जिज्ञासा आदि चाहिए वे तुममें हैं और मैं समर्थ गुरु हूँ। आज तक मेरा ऐसा कोई शिष्य नहीं हुआ जिसको मैंने आनंदित न किया हो।''

एक ज्ञानी का जो अनुभव होता है उसे केवल दूसरा ज्ञानी ही जान सकता है, अन्य किसी के बस की बात नहीं है। इसीलिए कहा गया है : **ज्ञानी की गत ज्ञानी जाने... धीरा की गत धीरा जाने।** लेकिन सामान्यजन इसे समझ नहीं पाते तो महापुरुष उन्हें उन्हींकी भाषा में समझाने की कृपा करते हैं।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! जब तुमको विवेकरूपी दीपक से आत्मरूपी मणि मिलेगी, तब तुम्हारी बड़ाई सुमेरु, समुद्र और आकाश से भी अधिक हो जायेगी।''

हाथी की बड़ाई सब जंतुओं से बड़ी है किंतु सुमेरु के आगे तुच्छ है लेकिन ज्ञानी की बड़ाई तो सुमेरु से भी ऊँची हो जाती है, उनका ब्रह्मभाव आकाश से भी ज्यादा व्यापक हो जाता है और उनका अनुभव सागर से भी अधिक गहरा होता है। उन ज्ञानवान महापुरुष को जो अनुभव होता है वहाँ वाणी की गति नहीं है, मन और बुद्धि भी वहाँ से लौटकर आ जाते हैं :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सः।

ऐसा वर्णनातीत अनुभव होता है ज्ञानवान का !

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''हे रामजी ! बहुत कहने से क्या लाभ है ? ज्ञातज्ञेय पुरुष आकाशवत् हो जाता है । वह न कभी उदय होता है, न अस्त होता है । विचार करके जिसने आत्मतत्त्व को जान लिया है वह उस पद को प्राप्त होता है जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं और सभी उस पर प्रसन्न होते हैं । उसका प्रगट आकार तो भासता है पर हृदय अहंकार से रहित होता है ।''

जो आत्मपद को पाकर गुणातीत हो गये हैं उन महापुरुष का आकार तो प्रगट दिखता है लेकिन वह प्रगट आकार (शरीर) दिखनेभर को है । वास्तव में तो वे पूरे ब्रह्मांड में व्यापे हुए होते हैं । जैसे, आकाश सब ओर व्याप्त होता है, ऐसे ही सारे ब्रह्मांड ज्ञानवान में व्याप्त हैं । सूर्य बर्फ का गोला हो जाय अथवा पृथ्वी उड़ने लगे तब भी उन्हें कोई आश्चर्य नहीं होता । वे समझते हैं कि सब माया में होता है ।

'हे रामजी ! वे अनंत जगत के कर्त्ता होते हैं फिर भी सदा अपने को अकर्त्ता जानते हैं । यह आश्चर्य है कि अणु-से-अणु और महत्-से-महत् होकर भी वे केवल विश्राम को पाये हुए होते हैं ।'

छोटे-से-छोटे जीवाणु (बेक्टीरिया) में भी उनकी चेतना है और सारे ब्रह्मांड के महान-से-महान में भी वे व्याप्त हैं । ऐसा अनुभव करके भी वे अपने स्वरूप में विश्रांति पाये हुए हैं यह बड़ा आश्चर्य है । नन्हीं-सी देह में इतने ऊँचे अनुभव को सँजोये हुए भी वे सामान्यजन की तरह व्यवहार करते हैं ।

आश्चर्यो त्रिभुवनजयी... त्रिभुवन की संपदा पर विजय पानेवाले वे ज्ञानवान सचमुच में आश्चर्यकारक हैं ।

इस तत्त्वज्ञान को सुननेवाला श्रोता भी आश्चर्यकारक पुण्यपुंज लेकर बैठा है । **आश्चर्यो श्रोता कुशलस्य वक्ता ।** इसको सुनना भी आश्चर्य है । कोई कुशल वक्ता ही इस तत्त्वज्ञान की बात को सुना सकता है । इसे सुननेमात्र से हजारों गौदान करने का फल मिलता है । सुनकर अगर मनन करे तो सारे तीर्थ, सारे यज्ञ, सारे दान का फल मिल जाता है ।

स्नातम् तेन सर्व तीर्थम् दातम् तेन सर्व दानम् ।
कृतं तेन सर्व यज्ञम् येन क्षणं मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृत्वा ॥

उद्देश्य ऊँचा बनायें

(उच्च कोटि के साधकों के लिए)

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

धन जोबन का करे गुमान वह मूरख मंद अज्ञान ।

धन, यौवन, पद, विद्या, चतुराई, प्रमाणपत्र का जो गुमान करता है वह मूर्ख है, अज्ञानी है ! जब तक तू ब्रह्मवेत्ता की तराजू में सही नहीं उतरता तब तक जीवात्मा है और जीवात्मा तो जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि का खिलौना है । जब तक ब्रह्मवेत्ताओं के गढ़ में ईमानदारी, समर्पण भाव या सच्चाई से नहीं पहुँचा तब तक तू जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि का खिलौना है ।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! ज्ञानवान की भली प्रकार सेवा करनी चाहिए । उनका बड़ा उपकार है । वे संसार-सागर से तारते हैं । आत्मज्ञानी के वचनों का आदर करना चाहिए । आत्मज्ञानी के वचनों का अनादर करना मुक्ति-फल का त्याग करना है । आत्मज्ञानी में एक भी गुण हो तो ले लेना चाहिए किंतु उनमें दोष नहीं देखना चाहिए ।''

आत्मज्ञानी का अपना प्रारब्ध होता है मिलने-जुलने, लेने-देने, खाने-पीने इत्यादि का... कुछ लोग गुरु के आगे तो कुछ बात करते हैं और अंदर में होता है कुछ दूसरा... तो ऐसे लोगों पर गुरुकृपा नहीं छलकती । उनका मन भी मलीन हो जाता है ।

अतः, साधक को चाहिए कि ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य करे । ईमानदारी से सेवा करे । ईमानदारी और सच्चाई उसमें सत्य की जिज्ञासा

पैदा कर देगी।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥

जो ज्यादा चतुराई करते हैं, आलस करते हैं, कामचोर बनते हैं उनको भगवान के रास्ते जाने की रुचि नहीं होगी।

साधक होने का मतलब है अपनी इच्छाएँ, वासनाएँ, आलस्य-प्रमाद और दुष्चरित्र का त्याग करके भगवान के लिए अपने अहं को मिटाकर भगवत्प्रीति बढ़ाने हेतु, एक ऊँचा उद्देश्य पाने के लिए पूरे प्रयत्न से लग जाना।

अगर उद्देश्य ऊँचा बनाया है तो उसमें विकल्प के लिए कोई स्थान नहीं है। हजारों जन्मों का काम एक ही जन्म में करना है, हजारों जन्मों के संस्कार इसी जन्म में मिटाने हैं, हजारों जन्मों की दुष्ट वासनाएँ इसी जन्म में नष्ट करनी हैं।

साधक को चाहिए कि तत्परता और ईमानदारी से सेवा करे। अगर वह ईमानदारी और सच्चाई से सेवा करेगा तो उसकी सेवा भी साधना बन जायेगी। जो तत्परता से सेवा करता है उसे किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए - यह अपने-आप ही आ जाता है। जैसे, अपनी दुकान अथवा घर का काम तत्परता से करते हैं उससे भी ज्यादा सेवा के स्थल पर तत्परता आ जाय तो समझो, ईमानदारी की सेवा है।

नौकरी-कामधंधे से समय बचाकर सेवा मिल गयी तो सेवा करें, नहीं तो जप-ध्यान करें। अपना समय व्यर्थ न गँवायें।

भगवान सत्यस्वरूप हैं। जो सच्चाई से जीता है, सच्चाई से सेवा करता है और सच्चाई से ध्यान-भजन करता है, वही ईश्वर के मार्ग पर दृढ़ता से चल पाता है।

लोग अपने कपड़े बदल देते हैं, मकान बदल देते हैं, अपना व्यवसाय बदल देते हैं लेकिन अपना स्वभाव नहीं बदलते। स्वभाव ही मनुष्य को स्वर्ग में ले जाता है, उसमें देवत्व ला देता है, स्वभाव ही मनुष्य को नरकों में ले जाता है, स्वभाव ही मनुष्य को कामी-क्रोधी-लोभी-मोही बना देता है, स्वभाव ही मनुष्य को दूसरे की निंदा करनेवाला बना देता है और अगर स्वभाव दिव्य हो जाय तो ब्रह्मज्ञान भी प्राप्त हो जाता है।

शरीर तो जैसे का तैसा ही होता है, शरीर को क्या बदलेंगे और आत्मा तो अबदल है, अतः, स्वभाव को ही बदलना है। उद्धव ने कृष्ण से पूछा : ''सबसे बड़ी बहादुरी, शौर्य क्या है?''

श्रीकृष्ण ने कहा : ''बाह्य शत्रुओं पर विजय, दुनिया की सारी सत्ता पर विजय यह बड़ा शौर्य नहीं है अपने स्वभाव पर विजय पाना ही सबसे बड़ी बहादुरी, शौर्य है। **स्वभावो विजयं शौर्यं।**''

(श्रीमद्भागवत)

अपने अंतःकरण को बदलना चाहिए। अंतःकरण में अगर भगवद्ज्ञान, भगवन्नामजप और भगवद्ध्यान होगा तो अंतःकरण पवित्र होगा और पवित्र अंतःकरण में ही भगवद्प्राप्ति की प्यास जग सकेगी। भगवद्प्राप्ति से मनुष्य सारे पाशों से, सारे बंधनों से सदा के लिए छूट जायेगा।

अतः, अपना उद्देश्य भगवत्प्राप्ति का बनायें। अपना उद्देश्य ऊँचा बनायें और उसकी प्राप्ति में ईमानदारी से लगें। सावधान और सतर्क रहें कि कहीं समय व्यर्थ तो नहीं जा रहा ? अपने परमात्मप्राप्ति के लक्ष्य को सदैव याद रखें और लक्ष्य की तरफ जानेवालों का संग करें। अपने से ऊँचों का संग करें। इससे उद्देश्य को पाने में सहायता मिलेगी।

*

* आदर्श की उपलब्धि के लिए सच्ची इच्छा - यही पहला कदम है। इसके बाद बाकी सब कुछ सहज हो जाता है। संघर्ष एक बड़ा पाठ है। याद रखो, संघर्ष इस जीवन में बड़ा लाभदायक है। हम संघर्ष में से होकर ही अग्रसर होते हैं।

* यदि एक आदर्श पर चलनेवाला व्यक्ति पचास भूलें करता है तो यह निश्चित है कि जिसका कोई आदर्श नहीं है वह पाँच सौ भूलें करेगा। अतः एक आदर्श रखना अच्छा है।

तीव्र विवेक

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

विवेक किसको बोलते हैं ?

दो चीजें मिल गयी हों, मिश्रित हो गयी हों उनको अलग करने की कला का नाम है विवेक । परमात्मा चेतन है, जगत जड़ है और दोनों के मिश्रण से सृष्टि चलती है । सृष्टि में सुख-दुःख, लाभ-हानि, अच्छा-बुरा, जीवन-मरण ये सब मिश्रित हो गया है । उसमें से सार-असार को, नित्य-अनित्य को, जड़ और चेतन को पृथक समझने की कला का नाम है विवेक ।

जगत में जितने भी दुःख हैं, क्लेश हैं, अनर्थ हैं सबके मूल में है विवेक की कमी । विवेक की कमी के कारण ही हम जो हैं उसका हमको पता नहीं है और जो हम नहीं हैं उसको (देह को) हम 'मैं' मान बैठे हैं ।

सत् क्या है - असत् क्या है ? शाश्वत क्या है - नश्वर क्या है ? नित्य क्या है - अनित्य क्या है ? इसका अगर विवेक हो जाय तो नश्वर को नश्वर समझने से दुःख नहीं होगा और शाश्वत को शाश्वत मानने से उसे पाये बिना मन नहीं मानेगा ।

जैसे, मिट्टी का घड़ा । कच्चे घड़े में यदि पानी डालो तो वह पानी में पिघल जाता है लेकिन उस घड़े को आग में बराबर पकाओ तो फिर वह पक्का घड़ा पानी की गर्मी आदि दोषों को हर लेता है और पानी को भी अमृतसम शीतल बना देता है । ऐसे ही सत्संग के द्वारा विवेक को जागृत किया जाता है । फिर ध्यानादि करके विवेक को परिपक्व किया जाता है । विवेक परिपक्व होने से संसार का व्यवहार भी शीतल हो जाता है, दोषों को हरनेवाला हो जाता है और दूसरों को भी सुख से, शीतलता से भरनेवाला हो जाता है ।

कच्चा घड़ा पानी को नहीं थाम सकता । घड़ा अग्नि में परिपक्व होता है तभी वह पानी को थाम सकता है । ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा के आनंद को, रस को, माधुर्य को वही थाम सकता है जिसका चित्त योगाग्नि में परिपक्व हुआ है ।

सुना तो है : 'परमात्मा अपना आत्मा है... संसार स्वप्न है... सब मरते हैं... दुःखी होने की कोई जरूरत नहीं है...' फिर भी दुःखी हो रहे हैं, चिंता कर रहे हैं । क्यों ? क्योंकि चित्तरूपी घड़ा अभी ध्यानयोगरूपी अग्नि में परिपक्व नहीं हुआ है । जब यह परिपक्व होगा तभी संसार का जल उसमें शीतल होगा अर्थात् दुःख नहीं देगा ।

आप दुनिया में दो रोटी कमाकर, दो बच्चे-बच्ची पैदा करके, उनको पाल-पोसकर मर मिटने के लिए नहीं आये हो अपितु सत्य-असत्य का विवेक करके, मिथ्या और शाश्वत का विवेक करके, नित्य-अनित्य का विवेक करके मुक्ति पाने के लिए आये हो ।

'मैं कौन हूँ ? शरीर मेरा है तो मैं शरीर नहीं हूँ । मन मेरा है तो मैं मन नहीं हूँ । बुद्धि मेरी है तो मैं बुद्धि नहीं हूँ... आखिर मैं कौन हूँ ?' इसका विवेक करके अपने-आपको पाकर उसमें विश्रांति पाने के लिए आये हो ।

विवेक से अपने स्वरूप का बोध मिल जाय और आप उसमें टिक जायें तो परिपक्व स्थिति आ जायेगी । परिपक्व स्थिति आने से आपका संसाररूपी सर्प मारने योग्य अथवा जहर फूँकने योग्य नहीं होगा लेकिन संसाररूपी सर्प का व्यवहार भी आदर्श हो जायेगा, सुखदायी हो जायेगा । अपने लिए और दूसरों के लिये प्रेम देनेवाला हो जायेगा, माधुर्य निखारनेवाला हो जायेगा ।

विवेक तीव्र होगा तो तुच्छ चीजों में राग करके फँसने का अवसर नहीं आयेगा वरन् वैराग्य आयेगा कि 'इतना भोगा... आखिर कब तक ? ऐसे बन गये... फिर क्या ?'

हम दिन-रात विवेक को ढाँककर ही काम कर रहे हैं। इसलिए कर-करके मर जाते हैं फिर भी कर्त्तव्य का अंत नहीं होता है। पा-पाकर मर जाते हैं फिर भी पाने की वासना का अंत नहीं होता है, जान-जानकर थक जाते हैं फिर भी जानकारी का अंत नहीं होता।

राजगृह में धन्यकुमार सुभद्रा आदि रानियों के साथ बात कर रहे थे। रानी सुभद्रा ने कहा :

''मेरा भाई अब संन्यासी हो जायेगा। आचार्य धर्मघोष का प्रवचन सुनता है और प्रतिदिन एक-एक रानी से मिलता है और बोलता है कि अब मैं सदा के लिये साधु हो जाऊँगा। ऐसा करके वह १५ रानियों का त्याग कर चुका है। कुल ३२ रानियाँ हैं। उसके बाद मेरा भाई संन्यासी हो जायेगा।''

धन्यकुमार : ''तेरा भाई क्या साधु होगा, खाक ?''

सुभद्रा बोली : ''वह ऐसे थोड़े ही रानियों को छोड़ रहा है ?''

धन्यकुमार : ''ऐसे थोड़े ही साधु बनते हैं !''

सुभद्रा : ''तो कैसे बनते हैं ?''

धन्यकुमार : ''ऐसे बनते हैं, देख। यह मैं साधु बना और चला। तुम्हारा भाई तो एक-एक रानी को छोड़ रहा है, अभी १७ बाकी हैं। मैं तो एक साथ मेरी आठों रानियों को छोड़ रहा हूँ।''

यह कहकर धन्यकुमार निकल पड़ा।

यदि दूरदर्शिता नहीं है, तीव्र विवेक नहीं है तो साधु होना मुश्किल है। जब तीव्र विवेक आता है तो एक झटके में ही सब छूट जाता है।

कई लोग बोलते हैं कि 'धीरे-धीरे छोडूँगा... देखूँगा... प्रयत्न करूँगा...' तो उनके लिये छोड़ना मुश्किल हो जाता है। जो एक ही झटके में छोड़ देते हैं वे ही छोड़ पाते हैं। 'धीरे-धीरे भजन करेंगे... संसार में रहकर भजन करेंगे...' तो करते रहो भजन और संसार भी भोगते रहो। फिर हो गया भजन !

विवेक होता है तो तीर लग जाता है, बात चुभ जाती है और मनुष्य लग पड़ता है।

विवेक तीव्र होने पर तो दो शब्द सुनकर भी व्यक्ति लग जाता है : 'कुछ भी हो जाय, ईश्वर को पाना ही है... समय नहीं गँवाना है।'

आवारा मन होता है वही फालतू बातें करता है, फालतू तर्क देता है, फालतू सुख-सुविधाएँ खोजता रहता है। जिनको लगन लगी है वे तो बस, ईश्वर की ही बातें सुनेंगे, ईश्वर का ही ध्यान करेंगे, ईश्वर के लिये ही सत्शास्त्र पढ़ेंगे अथवा ईश्वर के लिये ही सेवाकार्य करेंगे। विवेक नहीं है तो सुविधाएँ होते हुए भी व्यक्ति का मन भजन में नहीं लगता। जिनको तीव्र पुण्यमय विवेक होता है वे सुविधा हो तब भी और सुविधा न हो तब भी अपना काम बना लेते हैं। बस, विवेक होना चाहिए।

*

तब लग दोनों एक हैं...

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कहा है :

काम क्रोध अरु लोभ मोह की जब लग मन में खान।
तब लग दोनों एक हैं क्या मूरख अरु विद्वान॥

कोई अनपढ़, गँवार और मूर्ख हो एवं अध्यात्मविद्या से अनजान हो अथवा कोई अध्यात्मविद्या का बड़ा जानकार हो, बड़ा पंडित, उपदेशक अथवा कथाकार हो लेकिन उसके अंदर अगर काम, क्रोध, लोभ और मोह हो तो दोनों समान ही हैं क्योंकि गँवार भी अपनी उम्र बेचकर जी रहा है और पंडित भी संसार के दलदल में फँसकर अपनी आयु गँवा रहा है...

काम क्रोध अरु लोभ मोह की जब लग मन में खान... अगर हृदय में इन चीजों को जगह दी तो फिर शाश्वत शांति नहीं मिलती, शाश्वत सुख नहीं मिलता, शाश्वत को पाने की सूझबूझ नहीं मिलती और शाश्वत शांति नहीं मिली तो फिर **अशांतस्य कुतः सुखम्** ? अर्थात् अशांत को सुख कहाँ ?

काम-क्रोधादि दोषों के कारण ही व्यक्ति राग-द्वेष, वैर-विरोध, कलह-विवाद आदि में पड़ता है और अशांत हो जाता है। इसलिए अपने हृदय में द्वेष रखने की अपेक्षा द्वेष निकालने का उपाय खोजना चाहिए। मारपीट अथवा लड़ाई-झगड़ा करने की जगह तटस्थ होकर विचारें तो लगेगा कि ९० प्रतिशत बेवकूफी हमारी ही है और १० प्रतिशत जिससे हम द्वेष करते हैं उसकी है या तो उसे भिड़ानेवाले की है। जैसे हम दूसरों के दोष देखने में सतर्क रहते हैं, वैसे ही हम अपने दोष देखने में सतर्क हो जायें और जैसे अपने गुण देखने में सतर्क होते हैं, वैसे ही सामनेवाले के गुण देखें तो राग-द्वेष से बच जायें।

राग-द्वेष, छल-कपट इत्यादि हमारी क्षमताओं को हर लेते हैं। जैसे पूनम, एकादशी आदि पर्वों का संसार-भोग स्वास्थ्य और प्रसन्नता को हर लेता है और एकादशी, पूनम का व्रत, ध्यान-भजन, संयम हमारे पापों को हर लेता है वैसे ही भगवद्चिंतन, भगवद्ध्यान, औदार्यचिंतन और ऊँचा उद्देश्य हमारे राग-द्वेष को, हमारी अशांति को, हमारे कष्टों को हर लेता है।

जैसे, सूर्य के उदित होने से वसुंधरा का तिमिर भाग जाता है, वैसे ही ईश्वरप्राप्ति का दृढ़ उद्देश्य हमारे जीवन में से काम-क्रोधादि शत्रुओं को भगा देता है।

चाहे घर में रहो या पड़ोस में, चाहे ऑफिस में रहो या व्यापार में लेकिन तुम्हारे हृदय में अगर द्वेष बना रहा तो फिर विद्वान होने पर भी तुम्हारे बुरे हाल होते रहेंगे। भाई-भाई का द्वेष, देवरानी-जेठानी का द्वेष, पड़ोसी-पड़ोसी का द्वेष, अधिकारी-अधिकारी का द्वेष, व्यापारी-व्यापारी का द्वेष... उनको परेशान करता रहेगा।

दो व्यापारी थे। दोनों में बड़ी मित्रता थी। दोनों की दुकानें आमने-सामने थीं फिर भी दोनों में बड़ा स्नेह था। एक के मुनीम ने देखा कि सामनेवाले का धंधा बहुत चलता है। 'वह हमारे ग्राहक खींच लेता है। हमने थोड़ा कमा लिया तो क्या हो गया ?' ऐसा कहकर मुनीम ने अपने सेठ को भड़काया।

इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करते-करते दोनों के बीच जो स्नेह की सरिता थी वह सूख गयी और परस्पर द्वेष की आग भड़कने लगी, दोनों बड़े दुःखी हो गये और मित्र में से शत्रु बन गये।

उस नगर में एक महात्मा आये। दोनों व्यापारियों ने महात्मा का सत्संग सुना : ''द्वेष बड़ा हानिकारक है। जिसके प्रति द्वेष है उसको तो बाद में नुकसान है लेकिन जिस हृदय में द्वेष होता है उसकी सुख-सरिता को वह पहले जला देता है। द्वेष रखना समझो, अपनी तबाही करना है। द्वेष और कपट

अपनी बरबादी के, अपने पतन के मुख्य साधन हैं। जिसके मन में द्वेष और छल-कपट नहीं है और जो सबसे सरलता का व्यवहार करता है वह भवसागर से पार हो जाता है।

कपट गाँठ मन में नहीं सबसों सरल सुभाव ।
नारायण ता दास की लगे किनारे नाव ॥

मन में कपट न रखें, द्वेष न रखें। हम लोग भजन तो करते हैं, मंदिर-मस्जिद-चर्च-गुरुद्वारे में भी जाते हैं लेकिन हृदय-मंदिर को साफ-सुथरा रखने पर ध्यान नहीं देते इसलिए बाहर के मंदिर में ही घूमते रह जाते हैं, हृदय-मंदिर की परमात्म गहराई में नहीं पहुँच पाते हैं।

याद रखना, तुम्हारा जन्म संसार के विषयों में पच मरने के लिए नहीं हुआ है। तुम बाहर के मंदिर में भले जाओ, साधना-कक्ष में भले जाओ लेकिन हृदय-मंदिर में पहुँचने का यत्न भी अवश्य करना।

बाहर के मंदिर में जाने का फल है कि हृदय-मंदिर में पहुँचानेवाले संत मिल जायें, सत्संग-मंदिर में पहुँच जायें और सत्संग सुनते-सुनते सत्यस्वरूप ईश्वर की शांति पा लें, ईश्वर का माधुर्य पा लें, ईश्वरीय आनंद पा लें।

ईश्वर सर्वत्र है, सदा है और सबमें है। आप जिससे द्वेष करते हो उसकी गहराई में बैठे हुए परमात्मा के प्रति भी आप थोड़ी नफरत की ही धारणा बना लेते हो। किसीसे आपके कोई विचार नहीं मिलते तो नहीं मिलते हैं लेकिन जो विचार मिलते हैं इस कारण तो उनसे स्नेह करें।

कोई विचार नहीं मिलता... लेकिन एक सिद्धांत तो मिलता है कि सबकी आँखों में देखने की सत्ता परमेश्वर की है, सबके कानों में सुनने की सत्ता परमेश्वर की है, सबकी जिह्वा में चखने की सत्ता परमेश्वर की है, सबके दिलों में धड़कन परमेश्वर की है। 'मेरे प्रभु की सत्ता के बिना क्या मेरा दुश्मन देख सकता है ? मेरे प्रभु की सत्ता के बिना क्या मेरे शत्रु के दिल की धड़कनें चल सकती हैं ? चाहे वह कितना भी द्वेष करे... द्वेष उसकी मति में है, मेरी मति में है लेकिन दोनों की गहराई में तो तू ही है प्रभु !' ऐसा करके अपने हृदय को शीतल बनायें तो द्वेषी का द्वेष देर-सवेर प्रेम में बदल जायेगा। यह दर्शनशास्त्र की बात है, ब्रह्मज्ञान की ऊँची बात है।

पाश्चात्य जगत के महान दार्शनिक सुकरात ने अपने सत्संग में कुछ कह दिया होगा। एक व्यक्ति ने उसे अपने लिए कहा गया मान लिया और कसम खा ली : 'जब तक सुकरात की हत्या न करूँगा तब तक चैन की नींद न लूँगा।'

किसीने सुकरात को बता दिया कि फलाने व्यक्ति ने आपकी हत्या करने की कसम खा ली है।

सुकरात ने कहा : ''हम भी कसम खाते हैं।''

''आप कसम खायेंगे ?''

''हाँ, मैं भी कसम खाता हूँ कि जब तक उसे अपना मित्र न बना लूँगा तब तक चैन से न जीऊँगा।''

लोगों को हुआ कि देखते हैं कि अब द्वेषी का द्वेष जीतता है कि सुकरात की समता और प्रेम जीतता है ?

सुकरात के हृदय में तो किसीके लिए नफरत नहीं थी, वे तो किसीको भी पराया नहीं मानते थे, किसीका भी अमंगल नहीं चाहते थे। उनके पास समता थी, हृदय सबके कल्याण की भावना से परिपूर्ण था, उनके हृदय में प्रेम था।

जिसके हृदय में प्राणिमात्र के लिए प्रेम है उसका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। वह व्यक्ति अपने विचार से ही त्रस्त हो उठा एवं उसकी अंतरात्मा लानत बरसाने लगी कि इतने महान पुरुष के लिए इतना बुरा विचार किया ? आखिर उससे न रहा गया। वह जाकर सुकरात के चरणों पर गिर पड़ा और बोला : ''मैंने आपके लिए इतना-इतना बुरा सोचा, मैं अशांत हो गया हूँ। कृपया, आप मुझे माफ कर दें।''

सुकरात : ''मित्र ! आप मुझे माफ करें।''

''आप यह क्या कह रहे हैं ?'' यह कहते-कहते तो वह पानी-पानी हो गया।

राग-द्वेष रहित चित्त बनाना बड़ा बहादुरी का काम है। परमात्मा प्राप्ति का कार्य उसके लिए बड़ा सहज हो जाता है।

क्यों किसीसे द्वेष करना ? द्वेष करना ही हो तो अपने दुर्गुणों से द्वेष करें, काम-क्रोधादि से द्वेष करें।

किसी के दोष देखकर उससे द्वेष करने की जगह पर अपने दोषों से द्वेष करें। लेकिन मैं इस बात पर भी इतना राजी नहीं हूँ... अपने दोषों से द्वेष करेगा तब भी चिंतन तो करेगा कि 'मुझमें यह दोष है।' अतः, न दूसरों के दोषों का चिंतन करो न ही अपने दोषों का चिंतन करो वरन् अपनी और दूसरों की गहराई में जो रहता है उस परमेश्वर का ही चिंतन करो। यदि केवल उस परमेश्वर का ही चिंतन करोगे तो अन्य चिंतन स्वाभाविक ही छूट जायेंगे।

तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है :

काम क्रोध अरु लोभ मोह की जब लग मन में खान।
तब लग दोनों एक हैं क्या मूरख अरु विद्वान॥

अतः इन विकारों से बचने का प्रयत्न करें।

स्वभावः विजयः शौर्यं।

श्रीकृष्ण भागवत में कहते हैं : ''अपने स्वभाव पर विजय पाना ही शौर्य है, वीरता है।

*

* अपने आत्मदृष्ट उच्चतम आदर्श में दृढ़ रहो। स्थिर रहो। स्वार्थपरता व ईर्ष्या से बचो। आज्ञापालक बनो। सत्य, मानवता और अपने देश के प्रति चिरकाल तक निष्ठावान बने रहो तो तुम संसार को हिला दोगे।

* 'दुनिया चाहे जो कहे मुझे क्या परवाह ! मैं तो अपना कर्त्तव्यपालन करता चला जाऊँगा।' - यही वीरों की बात है। 'वह क्या कहता है ?' या 'क्या लिखता है ?' - यदि ऐसी ही बातों पर कोई रात-दिन ध्यान देता रहे तो संसार में कोई महान कार्य नहीं हो सकता। क्या तुमने यह श्लोक सुना है :

निंदन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

'नीतिकुशल लोग तुम्हारी निंदा करें या स्तुति, लक्ष्मी तुम पर कृपालु हो या कहीं भी खुशी से चली जाय, तुम्हारी आज मृत्यु हो या अगले युग में, परंतु न्यायपथ से कभी विचलित न होना।'

प्रार्थना की महिमा

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

किसीने कहा है :

जब और सहारे छिन जाते,
कोई न किनारा मिलता है।
तूफान में टूटी किश्ती का,
भगवान सहारा होता है॥

सच्चे हृदय की पुकार को वह हृदयस्थ परमेश्वर जरूर सुनता है, फिर पुकार चाहे किसी मानव ने की हो या किसी प्राणी ने। गज की पुकार को सुनकर स्वयं प्रभु ही ग्राह से उसकी रक्षा करने के लिये वैकुण्ठ से दौड़ पड़े थे, यह तो सभी जानते हैं।

पुराणों में कथा आती है :

एक पपीहा पेड़ पर बैठा था। वहाँ उसे बैठा देखकर एक शिकारी ने धनुष पर बाण चढ़ाया। आकाश से भी एक बाज उस पपीहे को ताक रहा था। इधर शिकारी ताक में था और उधर बाज। पपीहा क्या करता ?

कोई और चारा न देखकर पपीहे ने प्रभु से प्रार्थना की : ''हे प्रभु ! तू सर्वसमर्थ है। इधर शिकारी है, उधर बाज है। अब तेरे सिवा मेरा कोई नहीं। हे प्रभु ! तू ही रक्षा कर...''

पपीहा प्रार्थना में तल्लीन हो गया। वृक्ष के पास बिल में से एक साँप निकला। उसने शिकारी को दंश मारा। शिकारी का निशाना हिल गया। हाथ में से बाण छूटा और आकाश में जो बाज मँडरा रहा था उसे जाकर लगा। शिकारी के बाण से बाज मर गया और साँप के काटने से शिकारी मर गया। पपीहा बच

गया।

इस सृष्टि का कोई मालिक नहीं है ऐसी बात नहीं है। यह सृष्टि समर्थ संचालक की सत्ता से चलती है।

कुछ समय पहले की बात है :

जबलपुर (म. प्र.) में किसी कुम्हार ने देखा कि चिड़िया ने ईंटों के बीच में घोंसला बनाकर अण्डे दे दिये हैं। उसने सोचा : 'आँवाँ में ईंटों को पकाते वक्त घोंसला निकाल देंगे।' किन्तु वह भूल गया और आँवाँ में आग लगा दी। फिर उसे याद आया कि : 'अरे ! घोंसला तो रह गया !' कुम्हार उनकी प्राणरक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने लगा। लोगों ने कहा :

''तुम पागल हो गये हो ? यह कैसे संभव है कि आँवाँ की आग से घोंसला बच जाय ?''

कुम्हार : ''जब प्रह्लाद के जमाने में संभव था तो इस जमाने का स्वामी भी तो वही का वही है ! जमाना बदला है, वह परमात्मा थोड़े बदला है !''

उस कुम्हार ने आर्तभाव से प्रार्थना की और उस समर्थ सत्ता में खो गया। सुबह जब उसने अपना आँवाँ खोला और एक-एक करके ईंटें उठायीं तो क्या देखता है कि आँवाँ के बीच की ईंटों तक आग की आँच नहीं लगी है। चिड़िया उड़कर आकाश की ओर चली गयी और घोंसले में अण्डे ज्यों-के-त्यों !

यह घटित घटना है। 'हिन्दुस्तान' समाचार-पत्र में यह घटना छपी भी थी।

वह परमात्मा कैसा समर्थ है ! वह '**कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थः**' है। असंभव भी उसके लिए संभव है।

१९७० की एक घटना अमेरिका के विज्ञान-जगत में चिरस्मरणीय रहेगी।

अमेरिका ने ११ अप्रैल, १९७० को अपोलो-१३ नामक अंतरिक्षयान चन्द्रमा पर भेजा। दो दिन बाद वह चन्द्रमा पर पहुँचा और जैसे ही कार्यरत हुआ कि उसके प्रथम युनिट ऑडीसी (सी.एस.एम.) के ऑक्सीजन की टंकी में विद्युत तार में 'स्पार्किंग' होने के कारण अचानक विस्कोट हुआ जिससे उस युनिट में ऑक्सीजन खत्म हो गयी और विद्युत आपूर्ति बंद हो गयी।

उस युनिट में तीन अंतरिक्षयात्री थे : जेम्स ए. लोवेल, जॉन एल. स्वीगर्ट और फ्रेड वोलेस हेईज। इन अंतरिक्षयात्रियों ने विस्फोट होने पर सी. एस. एम. युनिट की सब प्रणालियाँ बंद कर दीं एवं वे तीनों उस युनिट को छोड़कर एक्वेरियस (एल. एम.) युनिट में चले गये।

अब असीम अंतरिक्ष में केवल एल. एम. युनिट ही उनके लिए 'लाइफ बोट' के समान था। परंतु बाहर की प्रचंड गर्मी से रक्षा करने के लिए उस युनिट में गर्मी रक्षा-कवच नहीं था। अतः पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रविष्ट होकर पुनः पृथ्वी पर वापस लौटने में उसका उपयोग कर सकना संभव नहीं था।

पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पृथ्वी पर वापस लौटने में अभी चार दिन बाकी थे। इतना लंबा समय चले उतना ऑक्सीजन एवं पानी का संग्रह नहीं बचा था। इसके अतिरिक्त इस युनिट के अंदर बर्फ की तरह जमा दे ऐसा ठंडा वातावरण एवं अत्यधिक कार्बन डाईऑक्साइड था। जीवन बचने की कोई गुंजाइश नहीं थी।

अंतरिक्षयात्री पृथ्वी के नियंत्रण-कक्ष के निरंतर संपर्क में थे। उन्होंने कहा : ''अंतरिक्षयान में धमाका हुआ है... अब हम गये...''

लाखों मील ऊँचाई पर अंतरिक्ष में मानवीय सहायता पहुँचाना संभव नहीं था। अंतरिक्षयान गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से भी ऊपर था। इस विकट परिस्थिति में सब निःसहाय हो गये। कोई मानवीय ताकत अंतरिक्षयात्रियों को सहाय पहुँचा सके यह संभव नहीं था। नीचे नियंत्रण-कक्ष से कहा गया :

''अब हम तो कुछ नहीं कर सकते। हम केवल प्रार्थना कर सकते हैं। जिसके हाथों में यह सारी सृष्टि है उस ईश्वर से हम केवल प्रार्थना कर सकते हैं... May God help you ! Pray to God. We too shall pray to God. God will help you.'' और देशवासियों ने भी प्रार्थना की।

युवान अंतरिक्षयात्रियों ने हिम्मत की। उन्होंने ईश्वर के भरोसे पर एक साहस किया। चंद्र पर

अवरोहण करने के लिए एल. एम. युनिट के जिस इन्जन का उपयोग करना था उस इन्जन की गति एवं दिशा बदलकर एवं स्वयं गर्मी-रक्षक कवचरहित उस एल. एम. युनिट में बैठकर अपोलो-१३ को पृथ्वी की ओर मोड़ दिया। ...और आश्चर्य ! तमाम जीवनघातक जोखिमों से पार होकर अंतरिक्षयान ने सही-सलामत १७ अप्रैल, १९७० के दिन प्रशान्त महासागर में सफल अवरोहण किया।

उन अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने बाद में वर्णन करते हुए कहा : ''अंतरिक्ष में लाखों मील दूर से एवं एल. एम. जैसे गरमी-रक्षक कवच से रहित युनिट में बैठकर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश करना और प्रचंड गर्मी से बच जाना, हम तीनों का जीवित रहना असंभव था... किसी भी मनुष्य का जीवित रहना असंभव था। यह तो आप सबकी प्रार्थना ने काम किया है एवं अदृश्य सत्ता ने ही हमें जीवनदान दिया है।''

सृष्टि में चाहे कितनी भी उथल-पुथल मच जाय लेकिन जब अदृश्य सत्ता किसीकी रक्षा करना चाहती है तो वातावरण में कैसी भी व्यवस्था करके उसकी रक्षा कर देती है। ऐसे तो कई उदाहरण हैं।

कितना बल है प्रार्थना में ! कितना बल है उस अदृश्य सत्ता में ! अदृश्य सत्ता कहो, अव्यक्त परमात्मा कहो, एक ही बात है लेकिन वह है जरूर। उसी अव्यक्त, अदृश्य सत्ता का साक्षात्कार करना यही मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

शील की महिमा

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

जिसके पास शील है उसका दुनिया में कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। शील क्या है ? अपनी तरफ से किसीका बुरा न चाहना एवं बुरा न करना - शील है।

महाभारत का एक प्रसंग है : एक बार दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र से पूछा : ''पिताजी ! हमारे पास राज्य है, धन-वैभव भी है, सारी सुख-सुविधाएँ हैं फिर भी हमको शांति नहीं है। लेकिन पांडवों का राज्य छीन लिया गया, १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास दे दिया गया फिर भी वे बड़े खुश रहते हैं। वे जहाँ जाते हैं लोग उनको मानते हैं। उनके पास कुछ भी नहीं है फिर भी लोग बड़ी खुशी से उनकी सेवा करते हैं और मैं अपने नौकरों-चाकरों को कितना देता हूँ फिर भी मेरी उतनी खुशी से सेवा नहीं होती है। इसका क्या कारण है ?''

धृतराष्ट्र : ''पांडवों के पास शील है। इसलिए वे इतने प्रभावशाली हैं। शील में बड़ी शक्ति होती है। शीलवानों के लिए इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।''

दुर्योधन : ''पिताजी ! शील क्या होता है ?''

धृतराष्ट्र : ''दुर्योधन ! जैसा सवाल तुम कर रहे हो ऐसा ही सवाल एक बार इंद्र ने देवगुरु बृहस्पति से किया था। किसीके लिए चित्त में द्वेष न रखना, किसीसे भी ईर्ष्या न करना, किसी पर भी क्रोध न करना, किसीसे भी उद्विग्न न होना एवं सबके हित में सदा रत रहना - यह शीलवान के लक्षण हैं। ऐसा शीलवान पुरुष कहीं भी जाय उसके लिए कोई कमी नहीं रहती।''

युधिष्ठिर शीलवान थे। अपने अज्ञातवास के समय वे विराट नगर में रह रहे थे। कौरवों ने विराट

नगर पर धावा बोल दिया और अर्जुन ने छिपे वेश में (बृहन्नला के रूप में) उनका सामना करके उन्हें हरा दिया था। विजयी होकर जब वे विराट नगर के राजकुमार के साथ लौटे तो विराट नगर के नरेश ने कहा : ''मेरा बेटा युद्ध जीतकर आया है।''

युधिष्ठिर ने कहा : ''नहीं, महाराज! युवराज की विजय में बृहन्नला का भी हाथ है।''

यह सुनकर विराट नगर के नरेश के अहंकार को चोट लगी। उन्होंने युधिष्ठिर को चौपड़ के पासे दे मारे। युधिष्ठिर की नाक से खून बहने लगा। युधिष्ठिर ने तुरंत अपना हाथ लगा दिया एवं द्रौपदी (सैयमन्द्रि) ने तुरंत पात्र लाकर नीचे रख दिया।

राजा : ''दो बूँद खून को इतना क्यों सँभालकर रखते हो ?''

युधिष्ठिर : ''महाराज! यदि मेरा खून जमीन पर गिर जायेगा तो आपको एवं राज्य को बड़ी मुसीबतें सहन करनी पड़ेंगी।''

राजा : ''तुम्हारा दो बूँद खून गिरेगा और मेरे राज्य को तकलीफ होगी ?''

युधिष्ठिर : ''हाँ, महाराज! शीलवान को कोई कष्ट दे तो उसे एवं उसके इलाके को बहुत सहन करना पड़ता है।''

शील में ऐसा भारी सद्गुण है कि शीलवान को कष्ट देने पर भी वह किसीका बुरा नहीं चाहता। शीलवान के विरोधी भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। यह शील की ही महिमा है कि युधिष्ठिर १२ साल वनवास में रहे फिर भी आनंदित रहे, १३वें वर्ष अज्ञातवास में रहे फिर भी उनका कोई कुछ न बिगाड़ सका। बाहर से भले कई विपत्तियाँ आयीं लेकिन वे उनके चित्त को चलित न कर सकीं।

शीलवान सदा संतुष्ट रहता है। यह शील बाहर की चीज नहीं है। इसे तो हर कोई धारण कर सकता है। आवश्यकता है केवल फालतू वासनाएँ छोड़ने की। निरर्थक वासनाएँ एवं निरर्थक कर्म छोड़ दें तो सार्थक कर्म अपने-आप होने लगते हैं। सार्थक कर्म, दूसरों के हित की भावना से किये गये कर्म शीलवान बनने में सहायक होते हैं और जो शीलवान होता है उसके लिए दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं है।

वृद्धा की ज्ञाननिष्ठा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक बुढ़िया थी। सत्संग सुनकर उसने अपनी मति को इतना सरल, निर्मल और पवित्र बना लिया था कि देवता तक उसकी प्रशंसा करते थे कि इस वृद्धा ने जीवन का फल पा लिया है। फल क्या पाया ? अमरपद को पा लिया है, अपने आत्मदेव को जान लिया है।

उस वृद्धा के पास आजीविका का एकमात्र साधन उसकी दो भैंसें थीं। उसका एक पुत्र था। पुत्र छोटा था तभी पति का स्वर्गवास हो गया था। बुढ़ापे की लकड़ी उसका यही एक लड़का था। लेकिन लड़का बड़ा होकर उसे सुख देगा या उसे सँभालेगा - ऐसी भ्रांति उसके चित्त में न थी।

उसे न सुख की वासना थी, न दुःख का भय। न उसे मित्र से मोह था, न शत्रु से घृणा। न किसीसे निंदा सुनकर वह दुःखी होती, न किसीसे प्रशंसा सुनकर हर्षित ही होती। उसकी न किसीसे ममता थी, न ही किसीसे द्वेष। ममता थी तो केवल अपने राम से थी। रोम-रोम में जो रम रहा है, उस राम से ममता थी और सारे संसार से वह समता का व्यवहार करती थी।

उस वृद्धा के इन सारे सद्गुणों की चर्चा फैलते-फैलते ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक पहुँची कि एक अनपढ़ वृद्धा ने आत्मज्ञान पा लिया है। ब्रह्मज्ञान को पा लिया है। उसने गुरुदेव का सत्संग सुनकर उसका मनन किया है। मनन करके निदिध्यासन किया है और साक्षात्कार कर लिया है। किसी अनुकूल परिस्थिति

को पाकर न वह हर्ष करती है और न प्रतिकूल परिस्थिति को पाकर शोक करती है। उसे किसीसे न राग है, न द्वेष। वह अपना सारा समय सेवा-साधना में बिताती है। समय कभी व्यर्थ नहीं गँवाती।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश को हुआ कि एक अनपढ़ वृद्धा इतनी सतर्क ! इतनी सहज ! उसको सुख-दुःख नहीं होता है ! चलो, हम त्रिदेव उसकी परीक्षा लेने चलें। हम चलें भारतभूमि पर।

तीनों देव आये भारत में। हाथ में कमंडलु है, बगल में पोथी है, बड़ा त्रिपुंड लगा है, पैरों में खड़ाऊँ है, गले में रुद्राक्ष की माला है... इस प्रकार ब्रह्माजी ज्योतिषी का रूप बनाकर आये और बोले :

''अरे, माई ! तुम्हारे भाग्य में तो बहुत दुःख है। तुमने अपने जीवन में बहुत दुःख देखा है। तुम्हारा बच्चा छोटा था तभी तुम विधवा हो गई। माता-पिता के घर भी भाभी ने तुमको बहुत रोका-टोका था। बचपन में ही माँ मर गयी और शादी के बाद कुछ ही समय में तुम्हारे पति चल बसे। उधर माँ मर गयी तो भाभी की डाँट-फटकार और इधर पति मर गये तो आजीविका के लिए मेहनत करनी पड़ती है। अरे, माई ! तुम्हारी तो किस्मत ही फूटी हुई है।''

ज्योतिषी महाराज की आँखों में बड़ा तेज था। उनका तेज देखकर माई ने बात सुन ली, फिर कहा : ''अच्छा, महाराज ! और कुछ सुनाओ।''

ज्योतिषी : ''माई ! तुम्हारा भाग्य ही फूटा है। तुमने बहुत दुःख देखें हैं अभी और भी दुःख आयेंगे।''

माई : ''अच्छा, और भी आयेंगे। ठीक है।''

ज्योतिषी : ''माई ! तुम्हें डर नहीं लगता ?''

माई : ''इतना आया वह देख लिया, जो आ रहा है वह भी देख रही हूँ और जो आयेगा वह भी देखा जायेगा। मैं तो देखनेवाली हूँ। मैं दुःखी क्यों होऊँ ? आप कहते हैं महाराज ! कि मैं दुःखी हूँ लेकिन मुझे नहीं लगता कि मैं दुःखी हूँ। दुःख मन को होता है, परेशानी तन को होती है, मैं तो जानती हूँ कि मैं तो मैं हूँ। आप इतने दुःखी क्यों हो रहे हैं ? आप तो बैठें, भोजन करें, पानी पियें।''

वृद्धा को दुःखी करने के लिए ब्रह्माजी ने सारे प्रयत्न कर लिए किंतु उस वृद्धा के चेहरे पर शिकन तक न आयी !

कुछ लोग तो ऐसे होते हैं कि दुःख होता है जरा-सा लेकिन 'मैं दुःखी हूँ, दुःखी हूँ...' करके अपने को ज्यादा दुःखी बना लेते हैं। ऐसों को दुःख से कौन बचा सकता है ? ऐसा सोचनेवाला तो स्वयं ही दुःख बनाता रहता है।

ब्रह्माजी ने सोचा कि अब क्या कहूँ ताकि यह दुःखी हो जाय ? फिर कहा :

''माई ! अब क्या बताऊँ, तेरा इकलौता बेटा है न...''

माई : ''हाँ, है तो है। क्या हो जायेगा ?''

ज्योतिषी : ''तुम्हारा प्रारब्ध खोटा है, भाग्य भी फूटा है...''

माई : ''प्रारब्ध शरीर का है, भाग्य भी शरीर का है। फूटे चाहे जुड़े, उसमें मेरा क्या जाता है ?''

ज्योतिषी : ''अरे, माई ! तुम्हारा जो इकलौता बेटा है उसको साँप काटेगा और वह मर जायेगा। बिल्कुल पक्की बात है। बिल्कुल पक्का ज्योतिष है।''

माई : ''जब मृत्यु निश्चित ही है तो फिर मैं दुःखी और परेशान क्यों होऊँ ? मैं दुःखी होकर अपना हृदय क्यों बिगाड़ूँ ? सूरज ढलता है यह निश्चित है तो सूरज को ढलनेवाला समझकर छाती कूटें क्या ? ऐसे ही हम प्रयत्न करेंगे कि लड़का जीवित रहे लेकिन पक्का ही है कि मरनेवाला है तो जैसा उसका प्रारब्ध... इसमें आप चिंता क्यों करते हैं ?''

ब्रह्माजी मन-ही-मन खुश हो रहे थे लेकिन बाहर से मुँह चढ़ा रहे थे : ''माई ! तुम्हारा हृदय है कि पत्थर ? तुम्हारा सगा लड़का है, इकलौता है, बुढ़ापे की लकड़ी है। उसके ग्रह ही ऐसे हैं कि अभी थोड़ी देर में उसको साँप काटेगा और वह मर जायेगा।''

माई : ''आपके पास कोई उपाय है क्या, महाराज ?''

ज्योतिषी : ''नहीं, अवश्यंभावी है।''

माई : ''अवश्यंभावी है तो फिर आप दुःखी क्यों होते हैं महाराज ? जो नियति है वह तो होकर रहेगी।''

जैसे पहले फिल्म तैयार होती है और जो

आनेवाला होता है वह आता ही है। उत्तरायण के दिनों में सूर्य उत्तर की तरफ जानेवाला है तो जानेवाला है। बारिश के दिनों में कीचड़ होती है तो होती ही है।

ज्योतिषीजी सोचते हैं कि बड़ी गज़ब है माई की ज्ञाननिष्ठा ! गुरु का ज्ञान बड़ी गहराई से पचाया है। वे जाने लगे : ''अच्छा माई ! चलते हैं। नारायण, नारायण...''

माई : ''महाराज ! इतनी मेहनत की है। कुछ तो ले जायें। भोजन करके जायें और पाँच आने की दक्षिणा लेकर जायें।''

''तुम्हारा बेटा मरनेवाला है तो पाँच आने की दक्षिणा का क्या करूँगा ?'' ऐसा कहकर ज्योतिषी महाराज तो चल पड़े। माई अपने काम में लग गयी। शाम हुई। लड़का खेत से घास का गट्ठर लेकर आया और घास भैंस के आगे डालने गया। उस गट्ठर में जो नाग छिपा हुआ था उसने लड़के को डस लिया और बेटा तत्काल मर गया। अब उसका उपचार क्या करना ? ज्योतिषी ने कहा भी था कि होनी है। चलो, जो होना था हो गया...गाँव के लोग आकर रोने कूटने लगे।

इतने में भगवान विष्णुजी संन्यासी का रूप लेकर आ गये और बोले :

''अरे, वह जा रहा है साँप। माई ! बोल, उस दुष्ट को मार डालूँ। उसने तेरे बेटे को डस लिया, मैं उसको मार दूँ ? बोल।''

साँप का और मेरे बेटे का प्रारब्ध होगा, महाराज ! उसको मारने से मेरा बेटा तो जिंदा नहीं हो जायेगा।''

इतना सुनकर विष्णुजी भी चल दिये। इतने में शिवजी औघड़ बाबा का रूप लेकर आये :

''अलख निरंजन ! अरे माई ! तेरे द्वार पर ज्योतिषी आये, संन्यासी आये। तू इतनी भक्ति करती है फिर भी तुझे इतना दुःख सहना पड़ता है तो भगवान को कौन मानेगा ?''

माई : ''जो मानेगा, वह भगवान के आनंद से आनंदित रहेगा। भगवान की उदारता से उदार रहेगा। भगवान की समता से सम रहेगा। भगवान की दृष्टि पाकर भगवन्मय हो जायेगा। नहीं मानेगा तो संसार में पचेगा। मैं भगवान को मानती हूँ तो कोई भगवान पर दया करती हूँ क्या ? भगवान को मानती हूँ तभी तो यह लड़का मर गया फिर भी मैं नहीं मर रही हूँ। लड़का मरा है तो उसका शरीर मरा है वह तो अमर आत्मा है, चैतन्य है। महाराज ! भगवान के रास्ते और गुरु के द्वार पर जाने का तो इतना बड़ा फल मिला है कि चित्त में शांति है। दुनियादार सुख के लिए सब कुछ करते हैं फिर भी दुःखी रहते हैं और मैं तो कुछ भी नहीं करती, फिर भी सुखी रहती हूँ। यही तो भगवान की और गुरु महाराज की कृपा है।''

बाबा : ''माई ! तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।''

माई : ''हाँ, महाराज ! बिगड़ गया है। जिनका सुधरा है वे संसार में जाते हैं। जिनका बिगड़ा है वे आपके धाम में जाते हैं।''

बाबा : ''मेरा धाम ?''

माई : ''हाँ, महाराज ! आपका धाम। मैं जानती हूँ कि आप कौन हैं ?''

''मैं भी जानता हूँ कि तुम कौन हो। तुम मेरा ही रूप हो।''

जिसने ईश्वरीय मार्ग पर दृढ़ता से कदम रखा है, जिसने गुरु का ज्ञान पचाया है वह फिर कभी संसार-बंधन में नहीं बँधता। फिर उसे संसार की कोई परिस्थिति चलायमान नहीं कर सकती। उससे तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी स्नेह करते हैं कि जीव अब शिवस्वरूप हुआ ! ऐसी महिमा है ब्रह्मज्ञान की !

*

* स्वयं ही अपना उद्धार करो। मित्र ! दूसरा कोई तुम्हें मदद नहीं कर सकता क्योंकि तुम स्वयं ही अपने सबसे बड़े हितैषी और स्वयं ही अपने सबसे बड़े शत्रु हो। तो फिर आत्मा का आश्रय लो।

* जिसे जितना बड़ा होना है उसके लिए उतनी ही कठिन परीक्षा रखी गयी है। परीक्षारूपी कसौटी पर जीवन कसने पर ही जगत ने उसको महान कहकर स्वीकार किया है।

विवेक का चश्मा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सुनी है एक कथा :

एक ब्राह्मण यात्रा करते-करते किसी नगर से गुजरा। बड़े-बड़े महल एवं अट्टालिकाओं को देखकर ब्राह्मण भिक्षा माँगने गया किन्तु किसीने भी उसे दो मुट्ठी अन्न नहीं दिया। आखिर दोपहर हो गयी। ब्राह्मण दुःखी होकर अपने भाग्य को कोसता हुआ जा रहा था : 'कैसा मेरा दुर्भाग्य है! इतने बड़े नगर में मुझे खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न तक न मिला? टिक्कड़ बनाकर खाने के लिए दो मुट्ठी आटा तक न मिला?'

इतने में एक संत की निगाह उस पर पड़ी। उन्होंने ब्राह्मण की बड़बड़ाहट सुन ली। वे बड़े पहुँचे हुए संत थे। उन्होंने कहा :

''ब्राह्मण ! तुम अपने भाग्य को कोसकर बड़ी गलती कर रहे हो। तुम मनुष्य से भिक्षा माँगो, पशु क्या जानें भिक्षा देना?''

ब्राह्मण दंग रह गया और कहने लगा :

''हे महात्मन्! आप क्या कह रहे हैं? बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं में रहनेवाले मनुष्यों से ही मैंने भिक्षा माँगी है।''

संत : ''नहीं ब्राह्मण ! मनुष्य-शरीर में दिखनेवाले वे लोग भीतर से मनुष्य नहीं हैं। अभीभी वे पुराने संस्कारों में जी रहे हैं। कोई शेर के चोले से आया है तो कोई बघेरे के चोले से आया है, कोई हिरण के चोले से आया है तो कोई गाय या भैंस के चोले से आया है। उनकी आकृति मानव-शरीर की जरूर है किन्तु अभी तक उनमें मनुष्यत्व निखरा नहीं है और जब तक मनुष्यत्व नहीं निखरता, तब तक दूसरे मनुष्य की पीड़ा का पता नहीं चलता... 'दूसरे में भी मेरा दिलबर ही है' यह ज्ञान नहीं होता। तुमने मनुष्यों से नहीं, पशुओं से भिक्षा माँगी है।''

ब्राह्मण का चेहरा चुगली खा रहा था। ब्राह्मण का चेहरा इन्कार की खबरें दे रहा था। सिद्ध पुरुष तो दूरदृष्टि के धनी होते हैं। उन्होंने कहा :

''देख, ब्राह्मण ! मैं तुझे यह चश्मा देता हूँ। इस चश्मे को पहनकर जा और कोई भी मनुष्य दिखे, उससे भिक्षा माँग। फिर देख, क्या होता है।''

ब्राह्मण जहाँ पहले गया था, वहीं पुनः गया। योगसिद्ध कलावाला चश्मा पहनकर गौर से देखा :

'ओहोऽऽऽ... वाकई कोई बिलार है तो कोई बघेरा है। आकृति तो मनुष्य की है लेकिन संस्कार पशुओं के हैं। मनुष्य होने पर भी मनुष्यत्व के संस्कार नहीं हैं।' घूमते-घूमते वह ब्राह्मण थोड़ा-सा आगे गया तो देखा कि एक मोची जूते सिल रहा है। ब्राह्मण ने उसे गौर से देखा तो उसमें मनुष्यत्व का निखार पाया।

ब्राह्मण ने उसके पास जाकर कहा :

''भाई ! तेरा धंधा तो बहुत हलका है और मैं हूँ ब्राह्मण। रीति-रिवाज एवं कर्मकाण्ड को बड़ी चुस्ती से पालता हूँ। मुझे बड़ी भूख लगी है लेकिन तेरे हाथ का नहीं खाऊँगा। फिर भी मैं तुझसे माँगता हूँ क्योंकि मुझे तुझमें मनुष्यत्व दिखा है।''

उस मोची की आँखों से टप-टप आँसू बरसने लगे। वह बोला :

''हे प्रभु ! आप भूखे हैं? हे मेरे रब ! आप भूखे हैं? इतनी देर आप कहाँ थे?''

यह कहकर मोची उठा एवं जूते सिलकर टका, आना-दो आना वगैरह जो इकट्ठे किये थे, उस चिल्लर (रेज़गारी) को लेकर हलवाई की दुकान पर पहुँचा और बोला :

''हे हलवाई ! मेरे इन भूखे भगवान की सेवा कर लो। ये चिल्लर (रेज़गारी) यहाँ रखता हूँ। जो कुछ भी सब्जी-पराठे-पूरी आदि दे सकते हो, वह इन्हें दे दो। मैं अभी आता हूँ।''

यह कहकर मोची भागा। घर जाकर अपने हाथ

से बनाई हुई एक जोड़ी जूती ले आया एवं चौराहे पर उसे बेचने के लिए खड़ा हो गया।

उस राज्य का राजा जूतियों का बड़ा शौकीन था। उस दिन भी उसने कई तरह की जूतियाँ पहनीं किन्तु किसीकी बनावट उसे पसंद नहीं आयी तो किसीका नाप नहीं आया। दो-पाँच बार प्रयत्न करने पर भी राजा को कोई जूती पंसद नहीं आयी तो मंत्री से वह क्रुद्ध होकर बोला : ''अगर इस बार ढंग की जूती लाया तो जूतीवाले को इनाम दूँगा और ठीक नहीं लाया तो मंत्री के बच्चे ! तेरी खबर ले लूँगा।''

दैवयोग से मंत्री की नजर इस मोची के रूप में खड़े असली मानव पर पड़ गयी, जिसमें मानवता खिली थी, जिसकी आँखों में कुछ प्रेम के भाव थे, चित्त में दया-करुणा थी, गुरुओं के संग का थोड़ा रंग लगा था। मंत्री ने मोची से जूती ले ली एवं राजा के पास ले गया। राजा को वह जूती एकदम 'फिट' आ गयी, मानो वह जूती राजा के नाप की ही बनी थी। राजा ने कहा :

''ऐसी अच्छी जूती तो मैं पहली बार ही पहन रहा हूँ। किस मोची ने बनाई है यह जूती ?''

मंत्री बोला : ''हुजूर ! वह मोची बाहर ही खड़ा है।''

मोची को बुलाया गया। उसको देखकर राजा की भी मानवता थोड़ी खिली। राजा ने कहा :

''जूती के तो पाँच रुपये होते हैं किन्तु यह पाँच रुपयोंवाली नहीं, पाँच सौ रुपयोंवाली जूती है। जूती बनानेवाले को पाँच सौ और जूती के पाँच सौ, कुल एक हजार रुपये इसको दे दो।''

मोची बोला : ''राजा साहब ! तनिक ठहरिये। यह जूती मेरी नहीं है, जिसकी है उसे मैं अभी ले आता हूँ।''

मोची जाकर विनयपूर्वक ब्राह्मण को राजा के पास ले आया एवं राजा से बोला :

''राजा साहब ! यह जूती इन्हींकी है।''

राजा को आश्चर्य हुआ ! वह बोला : ''यह तो ब्राह्मण है ! इसकी जूती कैसे ?''

राजा ने ब्राह्मण से पूछा तो ब्राह्मण ने कहा :

''मैं तो ब्राह्मण हूँ। यात्रा करने निकला हूँ।''

राजा : ''मोची ! जूती तो तुम बेच रहे थे। इस ब्राह्मण ने जूती कब खरीदी और बेची ?''

मोची ने कहा : ''राजन् ! मैंने मन में ही संकल्प कर लिया था कि जूती की जो रकम आयेगी वह इन ब्राह्मणदेव की होगी। जब रकम इनकी है तो मैं इन रुपयों को कैसे ले सकता हूँ ? इसीलिए मैं इन्हें ले आया हूँ। न जाने किसी जन्म में मैंने दान करने का संकल्प किया होगा और मुकर गया होऊँगा, तभी तो यह मोची का चोला मिला है। अब भी यदि मुकर जाऊँ तो न जाने मेरी कैसी दुर्गति हो ? इसीलिए राजन् ! ये रुपये मेरे नहीं हुए। मेरे मन में आ गया था कि इस जूती की रकम इनके लिए होगी। फिर पाँच रुपये मिलते तो भी इनके होते और एक हजार मिल रहे हैं तो भी इनके ही हैं। हो सकता है मेरा मन बेईमान हो जाता। इसीलिए मैंने रुपयों को नहीं छुआ और असली अधिकारी को ले आया।''

राजा ने आश्चर्यचकित होकर ब्राह्मण से पूछा : ''ब्राह्मण ! मोची से तुम्हारा परिचय कैसे हुआ ?''

ब्राह्मण ने सारी आपबीती सुनाते हुए सिद्ध पुरुष के चश्मेवाली बात बतायी एवं कहा :

''राजन् ! आपके राज्य में पशुओं के दीदार तो बहुत हुए लेकिन मनुष्यत्व का विकास इस मोची में ही नजर आया।''

राजा ने कौतूहलवश कहा : ''लाओ, वह चश्मा। ज़रा हम भी देखें।''

राजा ने चश्मा लगाकर देखा तो दरबारी वगैरह में उसे भी कोई सियार दिखा तो कोई हिरण, कोई बंदर दिखा तो कोई रीछ। राजा दंग रह गया कि यह तो पशुओं का दरबार भरा पड़ा है ! उसे हुआ कि ये सब पशु हैं तो मैं कौन हूँ ? उसने आईना मँगवाया एवं उसमें अपना चेहरा देखा तो शेर ! उसके आश्चर्य की सीमा न रही ! 'ये सारे जंगल के प्राणी और मैं जंगल का राजा शेर ! यहाँ भी मैं इनका राजा बना बैठा हूँ !' राजा ने कहा :

''ब्राह्मणदेव ! योगी महाराज का यह चश्मा तो बड़ा गजब का है ! वे योगी महाराज कहाँ होंगे ?''

ब्राह्मण : ''वे तो कहीं चले गये। ऐसे महापुरुष कभी-कभी ही और बड़ी कठिनाई से मिलते हैं।''

श्रद्धावान ही ऐसे महापुरुषों से लाभ उठा पाते हैं, बाकी तो जो मनुष्य के चोले में पशु के समान हैं वे महापुरुषों के निकट रहकर भी अपनी पशुता नहीं छोड़ पाते।

ब्राह्मण ने आगे कहा : ''राजन् ! अब तो बिना चश्मे के भी मनुष्यत्व को परखा जा सकता है। व्यक्ति के व्यवहार को देखकर ही पता चल सकता है कि वह किस योनि से आया है। एक मेहनत करे और दूसरा उस पर हक जताये तो समझ लो कि वह सर्पयोनि से आया है क्योंकि बिल खोदने की मेहनत तो चूहा करता है लेकिन सर्प उसको मारकर बिल पर अपना अधिकार जमा बैठता है।''

अब इस चश्मे के बिना भी विवेक का चश्मा काम कर सकता है और दूसरे को देखें उसकी अपेक्षा स्वयं को ही देखें कि हम सर्पयोनि से आये हैं कि शेर की योनि से आये हैं या सचमुच में हममें मनुष्यता खिली है ? यदि पशुता बाकी है तो वह भी मनुष्यता में बदल सकती है। कैसे ?

तुलसीदासजी ने कहा है :

बिगड़ी जनम अनेक की सुधरे अब और आजु।
तुलसी होई राम को रामभजि तजि कुसमाजु॥

कुसंस्कारों को छोड़ दें... बस। अपने कुसंस्कार आप निकालेंगे तो ही निकलेंगे। अपने भीतर छिपे हुए पशुत्व को आप निकालेंगे तो ही निकलेगा। यह भी तब संभव होगा, जब आप अपने समय की कीमत समझेंगे। मनुष्यत्व आये तो एक-एक पल को सार्थक किये बिना आप चुप नहीं बैठेंगे। पशु अपना समय ऐसे ही गँवाता है। पशुत्व के संस्कार पड़े रहेंगे तो आपका समय बिगड़ेगा। अतः पशुत्व के संस्कारों को आप निकालिये एवं मनुष्यत्व के संस्कारों को उभारिये। फिर सिद्ध पुरुष का चश्मा नहीं, वरन् अपने विवेक का चश्मा ही कार्य करेगा और इस विवेक के चश्मे को पाने की युक्ति मिलती है सत्संग से।

मानवता से जो पूर्ण हो,
वही मनुष्य कहलाता।
बिन मानवता के मानव भी,
पशुतुल्य रह जाता॥

*

संत चरित्र

प्रातः स्मरणीय विश्ववंदनीय
संत श्री आसारामजी महाराज की मातुश्री

पूजनीया श्री श्री माँ महँगीबा (अम्मा)

विश्व जिनकी ज्ञानगंगा में अवगाहन करके संसार के त्रिविध तापों से बचकर शीतलता पा रहा है, जिनका ज्ञानप्रकाश अनेकों हृदयों के अज्ञानांधकार को दूर करने में सहायक हो रहा है, जिनके श्रीचरणों में बैठकर अनेक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा शांत कर रहे हैं, जिनके दैवीकार्यों में जुड़कर अनेकों अपना भाग्य बना रहे हैं उन्हीं सबके प्यारे, सबके दुलारे प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज की जननी थीं - **पूजनीया श्री श्री माँ महँगीबा।**

जैसे सतयुग में कपिल भगवान की माँ देवहूति ने कर दिखाया, उसी इतिहास का लाखों वर्षों के बाद पुनः संतमाता माँ महँगीबा (अम्मा) के रूप में भारतभूमि पर पुनरावर्तन हुआ। परमात्म-प्राप्त पुत्र में इतनी श्रद्धाबुद्धि की कि स्वयं भी परमात्मप्राप्ति कर दिखाई। पुत्र में प्रभुदृष्टि, गुरुदृष्टि रखनेवाली माँ महँगीबा को कोटि-कोटि प्रणाम !

पूज्यश्री कहते हैं : ''**मेरे से भी आगे का काम मेरी माँ ने कर दिखाया। लाखों वर्षों के बाद इतिहास ने मेरे साथ यह मेहरबानी की। नहीं, नहीं... इतिहास ने मुझ पर मेहरबानी नहीं की, बल्कि इतिहास रचनेवाली मेरी माँ ने मुझ पर मेहरबानी की कि मुझे 'गुरु' रूप में निहारा। मैं तो उन्हें भुलावे में डालता था लेकिन वे भुलावे में नहीं पड़ीं।**

मुझे इस बात का बड़ा संतोष है कि ऐसी

तपस्विनी माता की कोख से यह शरीर पैदा हुआ और इस बात का भी मुझे बड़ा संतोष है कि आखरी दिनों में मैं उनके ऋण से थोड़ा उऋण हो पाया।''

माँ होकर भी गुरुभाव की, तुमने जो ज्योत जगाई है।
युगों-युगों तक अमर रहेगी, प्रेरणा हम सबने पाई है॥

संत माता पूजनीया श्री माँ महँगीबा का जीवन चरित्र लिखना वास्तव में बड़ा ही दुष्कर कार्य है... जिन्होंने पूरे विश्व को पूज्यश्री जैसा अनमोल रत्न दिया उन संत माता का जीवन कैसा रहा ? उन्होंने किस तरह पूज्यश्री में आध्यात्मिकता के संस्कार भरे ? पूज्यश्री के वियोग में किस तरह अपने हृदय पर पत्थर रखकर जीवन बिताया ? अपने संत पुत्र के प्रति उनका कैसा नजरिया था ? इन सब बातों का सटीक वर्णन लेखनी के लिए असंभव-सा ही है। फिर भी जनसमाज इन बातों से यत्किंचित् भी परिचित होकर प्रेरणा पा सके, इस हेतु यह नम्र प्रयास किया गया है।

पूजनीया श्री माँ महँगीबा अर्थात् हम सबकी पूजनीया श्री अम्मा का जीवन चरित्र विशेष रूप से भारत की प्रत्येक माता के लिये एक प्रेरणास्रोत सिद्ध हो सकेगा... ऐसी आशा है। (क्रमशः)

✲ इस जीवन में जो सर्वदा हताशचित्त रहते हैं उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। **वीरभोग्या वसुंधरा** अर्थात् वीर लोग ही वसुंधरा का भोग करते हैं। यह वचन नितांत सत्य है।

✲ सब जीवों में ब्रह्मदर्शन ही मनुष्य का आदर्श है। यदि सब वस्तुओं में उसको देखने में तुम सफल न होओ तो कम-से-कम एक ऐसे व्यक्ति में, जिसमें तुम सर्वाधिक श्रद्धा करते हो, उसका दर्शन करने का प्रयत्न करो। तदुपरांत दूसरों में भी उसी ब्रह्म का दर्शन करो व अपने आत्मस्वभाव में आत्मबल बढ़ाकर हिम्मतपूर्वक अपने वैरभाव और दोषों को काट दो। इसी प्रकार जो क्रिया-सुख, भाव-सुख, विचार-सुख और उससे भी सर्वोपरि नित्य नवीन रस अपने आत्मब्रह्म को पाने का लक्ष्य बनाओ तो तुम जीवनमुक्त निर्विकार नारायण पद में स्थित हो सकते हो।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

तू सूर्य बन !

उत्तरायण अर्थात् सूर्य का उत्तर दिशा की ओर प्रयाण। जैसे मकर-संक्रांति से सूर्य उत्तर दिशा की तरफ प्रयाण करता है वैसे ही आपका जीवन भी उन्नति की ओर अग्रसर होता जाय... ऋषि कहते हैं : **'तुम सूर्य की नाईं बनो।'**

कोई प्रश्न करता है कि 'महाराज ! सूर्य तो दो सौ करोड़ वर्ष पुराना है और नौ करोड़, तीस लाख मील दूर रहता है। हम उसके समान कैसे बन सकते हैं ? अगर बनें तो सूर्य कैसा है ? हाईड्रोजन और हीलियम गैस का गोला, उसके आगे बड़े-बड़े भयानक बम भी कुछ नहीं हैं इतना वह गर्म है और ऋषि कहते हैं : 'सूर्य की नाईं बनो।' लेकिन ऋषि के इस वचन के पीछे बड़ा गहरा आशय छिपा हुआ है।

ऋषि के कहने का भावार्थ यह है कि जैसे सूर्य अपने व्रत पर अडिग रहता है वैसे ही हे मनुष्य ! तू अपने व्रत पर अडिग रह। तू अपनी मनुष्यता बनाये रख। तू अपनी मनुष्यता से गिर मत। अगर तू मनुष्यता से ऊपर उठ जाय, योगसिद्ध हो जाय, समता के सिंहासन पर बैठ जाय तो और ऊँची बात है। लेकिन कम-से-कम मनुष्यता से कभी गिरना मत।

सूर्य की दूसरी विशेषता है कि वह नदियों, तालाबों आदि से पानी उठा लेता है, लेकिन पानी का अपने पास संग्रह नहीं करता वरन् उस पानी को पुनः लौटा देता है। खारे सागर में से भी अपनी किरणों के द्वारा जल ले लेता है और मीठा जल बरसाता है। उसी

पानी से खेत हरे-भरे होकर लहलहाने लगते हैं, फूल खिलने लगते हैं, धरती माता शीतल हो जाती है।

अतः हे मनुष्य ! तू सूर्य से त्याग सीख। तू भी धन बढ़ा, योग्यता बढ़ा, अक्ल बढ़ा किंतु उस धन, योग्यता एवं विद्या का केवल अपने अहंकार के पोषण के लिए उपयोग न कर वरन् उनका उपयोग बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय हो, ऐसा प्रयत्न कर। सूर्य सब जगह से पानी ले लेता है और देने में राग-द्वेष नहीं करता, ऐसे ही तू भी प्राप्त योग्यता को बिना राग-द्वेष के मानवता की सेवा में लगाने की प्रेरणा सूर्य से पा ले।

सूर्य की तीसरी विशेषता है कि वह गंदी नालियों, कीचड़ आदि से भी पानी उठा लेता है लेकिन गंदी जगहों से स्वयं प्रभावित नहीं होता। सूर्य गंदी जगहों से भी अपनी किरणों द्वारा पानी ले लेता है, वैसे ही तू भी हर जगह से गुण लेना सीख ले लेकिन स्वयं किसीके भी दुर्गुणों से प्रभावित न हो। सूर्य यह सिखाता है कि वमन जैसी गंदी चीज से भी जैसे वह वाष्प बनाकर पानी ले लेता है, ऐसे ही किसीके रोकने-टोकने से भी तेरे उद्देश्य की पूर्ति होती हो तो उसके रोकने-टोकने में अथवा फटकारने में से भी अपने हित की बात लेकर तू अपनी समता, नम्रता आत्मसुख की वृत्ति बनाकर तू निरंतर आगे बढ़ता जा।

सूर्य की चौथी विशेषता है कि वह कभी निराश नहीं होता है। कभी पलायनवादी विचार नहीं करता है। घनघोर घटाएँ छा जाती हैं और सूर्य को ढँक लेती हैं फिर भी सूर्य कभी यह नहीं सोचता है कि 'हाय रे ! इन घनघोर घटाओं ने मुझको घेर लिया है... कभी-कभी ८-८ दिन तक तो कहीं-कहीं ४ से ६ महीने तक इन घटाओं से घिरा रहता हूँ... मैं इतना देता हूँ फिर भी मेरे साथ अन्याय हो रहा है।' नहीं, सूर्य कभी निराश नहीं होता है। सूर्य कभी अपने को लघुता ग्रंथि में नहीं बाँधता है।

सूर्य देखता है कि घनघोर घटाएँ आती-जाती रहती हैं। कई बार आयीं और गयीं। ऐसे ही तुम्हें भी कभी कोई विफलता मिल जाय, परेशानी आ जाय, कोई रोग घेर ले, अथवा कभी निंदा हो जाय... इस प्रकार की कोई भी घटा तुम्हारे जीवन में आने पर तो, निराश मत होना और न ही पलायनवादी बनना वरन् तुम तो अपनी महिमा में वैसे ही चमकते रहना जैसे सूर्य चम-चम चमकता रहता है।

जो मंजिल चलते हैं वे शिकवा नहीं किया करते हैं।
जो शिकवा किया करते हैं वे मंजिल पहुँचा नहीं करते हैं॥

तू फरियाद मत कर, पुरुषार्थ कर। निराश मत हो, आशावादी बन, उत्साही बन तो दुःख के बादल बिखर जायेंगे। तू विघ्न-बाधाओं के सिर पर पैर रखकर आगे बढ़ता चला जा तो सफलता तेरी दासी हो जायेगी। विघ्न-बाधाएँ पैरों तले कुचलने की चीज है तथा सुख, प्रेम और आनंद बाँटने की चीज है।

सूर्य कितना पुरुषार्थी है, निरंतर पुरुषार्थ करता रहता है। सूर्य कभी हड़ताल नहीं करता वरन् सदैव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। नित्य अपना कर्त्तव्य पालते हुए भी उसको कर्त्तव्य करने का बोझा नहीं लगता और न ही वह किसी पर एहसान करने की डींग हाँकता है, ऐसे ही तू भी अपना कर्त्तव्यपालन कर और काम करने की डींग मत हाँक।

इसीलिए ऋषि कहते हैं कि तू सूर्य बन। हो सके तो सूर्य से ऊपर उठ जाना। सूर्य जिससे चमकता है उस चैतन्य को 'मैं' मानकर मुक्त हो जाना, लेकिन अगर तुम उतने उन्नत नहीं हो सकते तो कम-से-कम मानवता से नीचे तो मत गिरना। तुम भी सूर्य की भाँति अपना आत्मतेज विकसित करना।

सूर्य तुम्हें पौरुष और प्रकाश की प्रेरणा देता है। ऐसा सूर्य जिस तेज से चमकता है वह आत्मतेज तुम्हारे पास, तुम्हारे साथ है। तुम उसका आदर करते रहो, उससे लाभ लेते रहो और जानकर मुक्त हो जाओ। ॐ ॐ पुरुषार्थ... ॐ ॐ सतर्कता... ॐ ॐ साहस... ॐ ॐ सहजता... ॐ ॐ सरलता... ॐ शांति ॐ शांति...

*

गुरुगोविंदसिंह की समता

[गुरुगोविंदसिंह जयंती : २१ जनवरी २००२]

गुरु गोविंदसिंह अपने प्यारे सिख सैनिकों के

साथ कहीं जा रहे थे । मार्ग में वही गाँव आया जहाँ उनके दो सपूत दीवार में चुन दिये गये थे । सिख सैनिकों के खून में उबाल आ गया और उन्होंने सोचा कि इस गाँव को घेरकर जला दें । इसी गाँव में गुरुजी के दो सपूत दीवार में चुने गये थे ।

बात गुरु गोविंदसिंहजी के कानों तक पहुँची । गुरु गोविंदसिंहजी ने कहा :

''सिखों ! तुम्हें जोश आये वह स्वाभाविक ही है लेकिन हमारा उद्देश्य अधर्म के साथ लड़ना है । अनीति, अन्याय और शोषण के साथ लड़ना है । व्यक्ति के साथ हमारी कोई दुश्मनी नहीं है । अभी भी हमारे कहलानेवाले शत्रु अधर्म छोड़ दें तो हम उन्हें क्षमा कर सकते हैं । जिन्होंने हमारे बेटों को दीवार में चुनवाया वे अभी यहाँ नहीं हैं और दूसरे निर्दोष लोगों के घरों में आग लगाना - यह अपना धर्म नहीं सिखाता है । गुनाह किया किसी शासक ने और हम पूरा गाँव जला दें ? नहीं नहीं । भगवान करे इनको सद्बुद्धि मिले ।''

कैसी ऊँचाई थी उन महापुरुष में ! शत्रुओं को लोहे के चने चबवाने का सामर्थ्य था उनमें लेकिन उनके पुत्रों को जिन्होंने दीवार में चुन दिया उनको अधर्म छोड़ने पर क्षमा करने के लिए भी तैयार थे !

औरंगजेब और उसके आश्रित मुसलमान राजाओं ने जब हिंदुओं पर जुल्म करना शुरू किया तो गुरु गोविंदसिंह ने सिखों में गज़ब की प्राणशक्ति फूँक दी, पँच प्यारे तैयार किये और ऐसा धावा बोला कि औरंगजेब चिंतित हो गया । उसने गुरु गोविंदसिंह को चिट्ठी लिखी :

'गुरु गोविंदसिंहजी ! मुझे भगवान ने पैदा किया है और तख्तनशीन किया है । आपको भी भगवान ने पैदा किया है । आप अपनी गुरुगादी सँभालें और धर्मोपदेश दें । हमारी राजनीति में आप क्यों हाथ डालते हैं ? आप फौज क्यों बनाते हैं ? आप मुझे राज करने दें । जहाँ-तहाँ आपके सिख हमें परेशान कर देते हैं । राजा का काम भगवान ने हमको सौंपा है ।'

गुरु गोविंदसिंहजी ने बहुत सुंदर उत्तर दिया :

'आपको भगवान ने पैदा किया है और तख्त दिया है । आपकी जिम्मेदारी है कि भगवान के सभी लोगों को इंसाफ दो । सभी की देखभाल करो । आपको तख्त और ताज दिया है इंसाफ की हुकुमत के लिए ।

मुझे भी भगवान ने पैदा किया है और हिंदुओं को भी भगवान ने पैदा किया है । फिर भी आप हिंदुओं के पूजास्थल तोड़ते हैं और उनकी बुरी हालत करते हैं, उनसे अन्याय करते हैं । भगवान ने मुझे प्रेरणा दी है कि आपके जुल्म से हिंदुओं को बचाकर आपको **सबक सिखाऊँ** ।

आपको भगवान ने भेजा है तख्त और ताज के लिए तो मुझे भेजा है आप पर लगाम डालने के लिए ।'

कैसी ऊँची समझ रही है सनातन धर्म के संतों की । संसार की कोई भी परिस्थिति उन्हें कभी दबा नहीं पायी वरन् परिस्थितियों से टक्कर लेते हुए वे सदैव सनातन धर्म और संस्कृति की रक्षा करते रहे...

*

* मनुष्य कितनी भी गिरी हुई अवस्था में क्यों न पहुँच जाय, एक ऐसा समय जरूर आता है जब वह उससे आर्त होकर उर्ध्वगामी मोड़ लेता है और स्वयं में विश्वास करना सीखता है । पर हम लोगों को शुरू से ही इसे जान लेना अच्छा है ।

* जो व्यक्ति स्वयं से घृणा करने लगा है या स्वयं को कोसने लगा है उसके पतन का द्वार खुल चुका है । यही बात राष्ट्र के विषय में भी सत्य है । हमारा पहला कर्त्तव्य है कि हम स्वयं से घृणा न करें, स्वयं को व्यर्थ न कोसें क्योंकि आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं में विश्वास रखें और फिर ईश्वर में । जिसे स्वयं में विश्वास नहीं, उसे ईश्वर में कभी विश्वास नहीं हो सकता ।

संसार का इतिहास उन थोड़े-से व्यक्तियों का इतिहास है जिनमें आत्मविश्वास था । यह विश्वास अंतःस्थित देवत्व को ललकारकर प्रकट कर देता है, तब व्यक्ति कुछ भी कर सकता है । वह सर्वसमर्थ हो जाता है ।

दुर्गादास की वीर जननी

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

सन् १६३४ के फरवरी मास की घटना है : जोधपुर नरेश का सेनापति आसकरण जैसलमेर जिले से गुजर रहा था। जेमल गाँव में उसने देखा कि गाँव के लोग डर के मारे भागदौड़ मचा रहे हैं और पुकार रहे हैं : 'हाय कष्ट, हाय मुसीबत, बचाओ... बचाओ...'

आसकरण को हुआ कि कहीं मुगलों ने गाँव को लूटना तो आरंभ नहीं कर दिया हो अथवा किसी की बहू-बेटी की इज्जत तो नहीं लूटी जा रही है ? गाँव के लोगों की चीख-पुकार सुनकर आसकरण वहीं रुक गया।

इतने में उसने देखा कि दो भैंसे आपस में लड़ रही हैं। उन भैंसों ने ही पूरे गाँव में भगदड़ मचा रखी है लेकिन किसी गाँववासी की हिम्मत नहीं हो रही है कि पास में जायें। सारे लोग चीख रहे थे। मैंने देखी है भैंसों की लड़ाई, बड़ी भयंकर होती है।

इतने में एक कन्या आयी। उसके सिर पर पानी के तीन घड़े थे। उस कन्या ने सब पर एक नजर डाली और तीनों घड़े नीचे उतार दिये। अपनी साड़ी का पल्लू कसकर बाँधा और जैसे शेर हाथी पर टूट पड़ता है ऐसे ही उन भैंसों पर टूट पड़ी। एक भैंस का सींग पकड़कर उसकी गरदन को मरोड़ने लगी। भैंस उसके आगे रंभाने लगी लेकिन उसने भैंस को गिरा दिया। दूसरी भैंस पूँछ दबाकर भाग गयी।

सेनापति आसकरण तो देखता ही रह गया कि इतनी कोमल और सुंदर दिखनेवाली कन्या में गज़ब की शक्ति है ! पूरे गाँव की रक्षा के लिए एक कन्या ने कमर कसी और लड़ती हुई भैंस को मार गिराया। जरूर यह दुर्गा की उपासना करती होगी।

उस कन्या की गज़ब की सूझबूझ और शक्ति देखकर सेनापति आसकरण ने उसके पिता से उसका हाथ माँग लिया। कन्या का पिता गरीब था और एक सेनापति हाथ माँग रहा है, पिता के लिए इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकती थी ? पिता ने कन्यादान कर दिया। इसी कन्या ने आगे चलकर वीर दुर्गादास जैसे पुत्ररत्न को जन्म दिया।

एक कन्या ने पूरे जेमल गाँव को सुरक्षित कर दिया। साथ ही हजारों बहू-बेटियों को यह सबक सिखा दिया कि भयजनक परिस्थितियों के आगे कभी घुटने न टेको। लुच्चे, लफंगों के आगे कभी घुटने न टेको। श्रेष्ठ, सदाचारी, संत-महात्मा से, भगवान और जगदंबा से अपनी शक्तियों को जगाने की योगविद्या सीख लो। अपनी छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत करो एवं अपनी संतानों में भी वीरता के, भगवद्भक्ति के, ज्ञान के सुंदर संस्कारों का सिंचन करके उन्हें देश का एक उत्तम नागरिक बनाओ।

राजस्थान में तो आज भी बच्चों को लोरी गाकर सुनाते हैं :

सालवा जननी एहा पुत्त जण जे हा दुर्गादास

अपने बच्चों को साहसी, उद्यमी, धैर्यवान, बुद्धिमान और शक्तिशाली बनाने का प्रयास सभी माता-पिता को करना चाहिए। सभी शिक्षकों एवं आचार्यों को भी बच्चों में संयम-सदाचार बढ़े इस हेतु आश्रम से प्रकाशित 'युवाधन सुरक्षा' तथा उनका स्वास्थ्य मजबूत बने इस हेतु 'योगासन' पुस्तक का पठन-पाठन करवाना चाहिए। ताकि भारत पुनः विश्वगुरु की पदवी पर आसीन हो सके।

✻

> ✻ मानवजाति के समग्र इतिहास में सभी महान स्त्री-पुरुषों में यदि कोई महान प्रेरणा सबसे अधिक सशक्त रही है तो वह है- आत्मविश्वास। वे इस ज्ञान के साथ पैदा हुए थे कि वे महान बनेंगे और वे महान बने भी।

भारत का इतिहास

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

हमारी संस्कृति के पाँच स्तंभों में उसका इतिहास विशिष्ट है।

४,३२,००० वर्ष का कलियुग, ८,६४,००० वर्ष का द्वापर युग, १२,९६,००० वर्ष का त्रेता युग और १७,२८,००० वर्ष का सतयुग होता है। इस प्रकार कुल मिलाकर ४३,२०,००० वर्ष बीतते हैं तब एक चतुर्युगी पूरी होती है। ऐसी ७१ चतुर्युगियाँ बीतती हैं तब एक मन्वंतर और ऐसे १४ मन्वंतर बीतते हैं तब एक कल्प होता है अर्थात् करीब एक हजार चतुर्युगी बीतती हैं तब एक कल्प अर्थात् ब्रह्माजी का एक दिन होता है। ऐसे ब्रह्माजी अभी ५० वर्ष पूरे करके ५१वें वर्ष के प्रथम दिन के दूसरे प्रहर में हैं अर्थात् सातवाँ मन्वंतर, अट्ठाइसवीं चतुर्युगी, कलियुग का प्रथम चरण और उसके भी ५२२७ वर्ष बीत चुके हैं।

ऐसा इतिहास दूसरी किस संस्कृति में है ?

श्राद्ध, पितृलोक और स्वर्गलोक की खोज हमारी संस्कृति के उपासकों ने ही की है।

अमेरिका की खोज करनेवाला कोलम्बस जन्मा भी नहीं था उससे भी करीब ५००० वर्ष पहले भारत का वीर अर्जुन स्वर्ग से दिव्यास्त्र ले आया था, यह तो यहाँ का बच्चा-बच्चा जानता है। उससे भी वर्षों पहले खट्वांग, मुचकुन्द आदि राजा स्वर्ग जाकर आ चुके थे।

एक ऐसा जमाना था जब आपके देश भारत में लोग सोने की थालियों एवं कटोरियों में भोजन किया करते थे एवं सोने के प्यालों में पानी पीते थे। युधिष्ठिर महाराज यज्ञ करते तब हाथ जोड़कर साधु-ब्राह्मणों से प्रार्थना करते कि 'हे ब्राह्मणों ! आपको जिस सोने की थाली-कटोरी एवं प्याले में भोजन परोसा गया है उन्हें आप दक्षिणा के रूप में स्वीकार करके घर ले जायें।'

कुछ साधु-ब्राह्मण दक्षिणा के रूप में सोने के बर्तन ले जाते तो कुछ कहते कि 'हम आत्महीरा सँभालेंगे कि तुम्हारे इन ठीकरों को ?' और वे उन्हें छोड़कर चले जाते। ऐसे थे, आपके भारत के साधु पुरुष !

धीरे-धीरे बाहरी लोग आकर भारत को लूटते चले गये। पहले तो फेरीवाले बोलते थे : 'देना हो तो दे दो सोने-चाँदी के टूटे-फूटे बर्तन !'

किन्तु लोग लुट गये तो फिर आवाज़ बदली : 'देना हो तो दे दो ताँबे-पीतल के पुराने बर्तन !' आज से ४५-५० वर्ष पहले जब हम बालक थे, तब यह आवाज सुनते थे। किन्तु आज हमारे बच्चे सुनते हैं : 'देना हो तो दे दो प्लास्टिक के पुराने जूते-चप्पल !'

हम बालक थे तो सौ रुपयों में एक माह तक पूरे कुटुंब का भरण-पोषण मजे से हो जाता था। और आज... दो हजार रुपये मासिक कमानेवाले लोग बेचारे कैसे जीते होंगे, यह पचीस हजार रुपये मासिक कमानेवालों को क्या पता ? अपने गाल में थप्पड़ मारकर, गाल लाल करके मध्यम वर्ग जी रहा है बेचारा। बेटे-बेटियों की शादी में तो माँ-बाप बेचारे गिरवी रखा गये हों, ऐसी उनकी दशा हो जाती है। जिन्होंने परदेश में रुपयों की थप्पियाँ जमा कर रखी हों उन्हें इस बात का क्या पता चले ? अथवा जिनको देश में ही ऊँचा पद एवं ऊँची कमाई हो उन्हें भी क्या पता चले ? धन-वैभव तो विदेशी लूट गये, राजनीति की समझ भी लूट गये तभी तो हमारे अधिकारियों को प्रशिक्षण के लिए विदेश भेजा जाता है। मानों, अपने देश में सब नष्ट हो चुका है। पहले राजकुमारों को किन्हीं ऋषिद्वार या संतद्वार पर भेजते थे और अब अधिकारियों को शोषकों के यहाँ भेजा जाता है।

फिर भी एक बात की खुशी है कि हमारा देश

कृषि-प्रधान, भावना-प्रधान, सहिष्णुता-प्रधान तो है ही, साथ ही उसमें एक बड़ा सद्गुण यह भी है कि पड़ोसी के प्रति उसका हाथ उदार है। पर्व-त्यौहार पर गरीब-गुरबों को भी कुछ-न-कुछ देने की भावना है भारतवासियों में। और दूसरा भी एक बड़ा गुण है हमारे देश का कि हमारे पास भगवद्भक्ति का पाथेय है। चित्त की शांति, प्रसन्नता बनी रहे एवं आरोग्यशक्ति मिलती रहे ऐसे शुभ संस्कारों को अभी तक हमने खोया नहीं है। इन संस्कारों को वे लोग नहीं लूट पाये। हमारे भक्ति, ज्ञान एवं धर्म के संस्कारों को कोई लूट नहीं पाया।

ये ही शुभ संस्कार प्रत्येक भारतवासी में ज्यादा-से-ज्यादा फलें-फूलें तो बाह्य रूप से भी हम पुनः पहले की तरह सुखी एवं समृद्ध हो सकते हैं, अपनी खोयी हुई गरिमा को पुनः लौटा सकते हैं। जागो, भारतवासियो! जागो!!

साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किसलिए ?

शिष्य जब गुरु के चरणों में मस्तक रखता है तब गुरु के चरणों की अँगुलियाँ और विशेषकर अँगूठा द्वारा जो आध्यात्मिक शक्ति प्रवाहित होती है वह मस्तक द्वारा शिष्य अनायास ही ग्रहण करके आध्यात्मिक शक्ति का अधिकारी बन जाता है। इसी प्रकार शिष्य द्वारा किये जानेवाले साष्टांग दण्डवत् प्रणाम के पीछे भी रहस्य है।

विदेश के बड़े-बड़े विद्वान एवं वैज्ञानिक भारत में प्रचलित गुरु समक्ष साधक के साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की प्रथा को पहले समझ न पाते थे कि भारत में ऐसी प्रथा क्यों है। अब बड़े-बड़े प्रयोगों के द्वारा उनकी समझ में आ रहा है कि यह सब युक्तियुक्त है। इस श्रद्धा-भाव से किये हुए प्रणाम आदि द्वारा ही शिष्य गुरु से लाभ ले सकता है, अन्यथा आध्यात्मिक उत्थान के मार्ग पर वह कोरा ही रह जाय।

(आश्रम की 'मन को सीख' पुस्तक से)

लाल किला : समृद्धशाली हिन्दू समाज का प्रतीक...

(गतांक का शेष)

ऑक्सफोर्ड के बोडलियन पुस्तकालय में एक चित्र आज भी सुरक्षित है जिसमें सन् १६२८ में शाहजहाँ के 'दीवान-ए-आम' में फारस के राजदूत का स्वागत करते हुए दिखाया गया है। जबकि सरकारी इतिहास के अनुसार दिल्ली का 'लाल किला' शाहजहाँ द्वारा सन् १६३८ से १६४८ के बीच बनाया गया।

बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत का झूठा इतिहास लिखनेवाले दो आँखवाले अंधों की दृष्टि में यह प्रमाण क्यों नहीं आया ?

सबसे बड़ी बात तो यह है कि इतने भव्य निर्माण के लिए प्रतिभा, बुद्धि, ज्ञान, सुहृदयता, शांति एवं सुरक्षा का होना आवश्यक था जबकि लगभग सभी मुगल बादशाह निपट गँवार, क्रूर, शोषक एवं विलासी थे। उन्हें जनता को लूटने, मार-काट करके हिन्दुओं को मुसलमान बनाने, अपने रिश्तेदारों के षड्यंत्रों से लड़ने एवं हजारों स्त्रियों से भरे हरमों को सँभालने से ही समय नहीं मिलता था। अरब के जिन रेगिस्तानों से मुगल आये थे वहाँ गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, लूट-खसोट, भूखमरी एवं जंगलीपने के अलावा कुछ विशेष नहीं था।

हम पाठकों को एक ऐसी बात बताना चाहेंगे जिसे पढ़कर वे उन अविवेकियों पर खूब हँसेंगे जो भारत की भव्य भवन रचनाओं को 'मुगल निर्माण

कला का सुन्दर नमूना' बताते हैं। बात यह है कि हिन्दू शास्त्रों में दूरी को अंगुल, हाथ, गज, योजन, मील आदि के द्वारा मापा जाता है। अंग्रेजी में सेंटीमीटर, मीटर, फुट, किलोमीटर आदि से दूरी मापी जाती है परन्तु अरब में दूरी मापने का कोई पैमाना उस समय नहीं था। चूँकि वहाँ पानी के स्रोत बड़े दूर-दूर होते हैं, अतः वहाँ दूरी को पानी के स्रोतों के आधार पर मापा जाता था। जैसे, अमुक स्थान-से-अमुक स्थान तीन तालाब दूर है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिन मुगलों के पास माप का कोई भी पैमाना नहीं था, उन्होंने इतने भव्य भवन, किले, मस्जिदें एवं मकबरे कैसे बनाये ? वह कैसी 'भव्य मुगल निर्माण कला' थी जिसमें माप का कोई पैमाना ही नहीं था ?

लालकिले के लाहौर दरवाजे से चाँदनी चौक पर चलते समय एक जैन मंदिर आता है। इससे थोड़ी ही दूरी पर गौरीशंकर का मंदिर है जबकि जामा मस्जिद लालकिला से लगभग एक मील दूर है।

अब यहाँ पर विचार करने योग्य बात यह है कि शाहजहाँ एक धर्मान्ध मुगल था। उसने हिन्दुओं के अनेक मंदिर तुड़वाये थे, यह बात उसके अपने दरबारी लेखक द्वारा रचित 'बादशाहनामा' में स्पष्ट लिखी है। **ऐसा धर्मान्ध शाहजहाँ जैन मंदिर एवं गौरीशंकर मंदिर को तो लालकिले के निकट रहने दे जबकि किले में रहनेवाले अपने संबंधियों की नमाज के लिए जामा मस्जिद को इतनी दूर बनवाये यह सपने में भी संभव नहीं हो सकता।**

पुरानी दिल्ली का प्रमुख राजमार्ग चाँदनी चौक कहलाता है। यह लालकिले के लाहौर दरवाजे से प्रारंभ होता है। यह चाँदनी चौक आज भी हिन्दुओं की बस्ती है। यदि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली एवं लालकिले का निर्माण कराया होता तो वह चाँदनी चौक जैसे प्रमुख स्थान को हिन्दुओं से सम्पन्न नहीं होने देता। वहाँ के भूखण्ड एवं भवन शाहजहाँ के मित्रों, निकट के संबंधियों एवं दरबारियों को बाँटे गये होते और वहाँ आज भी उनके वंशज अपना कारोबार करते। अपने घर के दरवाजे पर हिन्दू समाज को बिठाना शाहजहाँ जैसे धर्मान्ध व्यक्ति के लिए संभव ही नहीं था। काफिरों को उखाड़ना-मिटाना ही उसका उद्देश्य था।
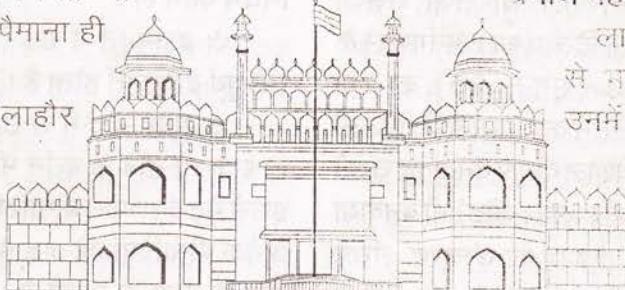
लालकिले के 'खास महल' में सूअर के मुखवाले चार नल आज भी देखे जा सकते हैं। मुगलों को सूअरों से कितनी घृणा होती है यह सभी जानते हैं परन्तु हिन्दुओं के लिए सूअर स्नेह का पात्र है क्योंकि वे भगवान के वराह अवतार की पूजा करते हैं। क्या यह लालकिले के हिन्दू मूल का प्रमाण नहीं है ?

लालकिले को शिलालेखों से भर दिया गया है परंतु उनमें से किसी भी शिलालेख में यह स्पष्ट नहीं है कि लालकिले को शाहजहाँ ने कौन-सी तिथि से बनाना शुरू किया, कब बनकर पूरा हुआ और शिलालेख कब व किसकी आज्ञा से लिखा गया अर्थात् शिलालेख को प्रमाण मानने के लिए उसमें जो आवश्यक बातें होनी चाहिए, वे हैं ही नहीं। शिलालेखों की संख्या अधिक होने के कारण यहाँ पर सभी का उल्लेख करना संभव नहीं है परन्तु लालकिले का दर्शक उन्हें पढ़कर स्वयं ही समझ सकता है कि ये सारे शिलालेख बिना सिर-पैर के हैं तथा किसी नासमझ-गँवार द्वारा लिखे-लिखवाये गये हैं।

सरकारी इतिहास के अनुसार 'शाहजहाँ ने सन् १६४८ को लालकिले में यमुना नदी की ओर वाले दरवाजे से प्रवेश किया था।' पाठक उपरोक्त तथ्य पर स्वयं विचार करें कि जिस बादशाह ने पुरानी दिल्ली जैसी भव्य नगरी बसायी एवं विशाल लालकिले का निर्माण किया उसे नगर व किले में पहली बार कैसे आना चाहिए था ?

निश्चय ही उसे सजे-धजे हाथी पर सवार होकर एक भव्य जुलूस, गाजे-बाजे एवं शानोशौकत

के साथ नगर के राजमार्ग से अपनी नयी राजधानी में प्रवेश करना चाहिए था। परन्तु शाहजहाँ एक चोर की तरह चुपचाप असुविधाजनक एवं खतरे से भरे हुए नदी किनारेवाले मार्ग से क्यों आया ? क्या शाहजहाँ के चाटुकार भारत की जनता के समक्ष इस गुत्थी को सुलझा सकते हैं ?

शाहजहाँ के चाटुकारों के झूठा साबित होने के बाद अब प्रस्तुत है वह ऐतिहासिक प्रमाण जो लालकिले की वास्तविकता को प्रगट करता है।

'सन् १०२२ में जब महमूद गजनवी ने कन्नौज जीता, तब (तंवर वंश का) जयपाल वहाँ का शासक था। दिल्ली पर भी उसीका शासन था। जयपाल का उत्तराधिकारी कुमारपाल था तथा उसका उत्तराधिकारी अनंगपाल द्वितीय था। अनंगपाल के संबंध में संवत् ११९७ (सन् १०६०) का एक शिलालेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि दिल्ली नगर के चारों ओर एक विशाल दीवार बनवाकर उसने इसका किला बनवाया और 'लाल कोट' भी बनवाया था।' *(रसमाल पुस्तक, १९२७ का संस्करण, लेखक ए.के. फोर्बेस)*

देवनागरी लिपि में लिखे इस हिन्दी शिलालेख की वास्तविक शब्दावली इस प्रकार है :

'दिल्ली का कोट कराया लाल कोट बनाया।'

उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट है कि आजका लालकिला सन् १०६० में अनंगपाल द्वितीय द्वारा निर्मित लाल कोट है। बस इसके नाम में से 'कोट' शब्द को हटाकर उसकी जगह 'किला' थोप दिया गया। यदि लालकिले का ईमानदारीपूर्वक पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण किया जाय तो सत्य सामने आ जायेगा।

- संदर्भ ग्रंथ : 'दिल्ली का लाल किला लाल कोट है', 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' एवं 'विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय।' *(लेखक : पी.एन.ओक.)*

- संकलनकर्ता : मदन लखेड़ा, साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी आश्रम

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १११ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जनवरी २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

सावधानी से स्वास्थ्य

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से

स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थ्यरक्षक कु... नियम जान लें :

✲ ब्रह्ममुहूर्त में उठें (सूर्योदय से लगभग... घंटे पूर्व ब्रह्ममुहूर्त होता है।)

✲ सुबह नींद में से उठकर बासी पानी पी... हो सके तो ताँबे के बर्तन में रखा हुआ पानी पी... इससे पेट की तमाम बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। क... अनेक बीमारियों की जड़ है, वह इस प्रयोग से ... दिन में ठीक हो जाती है। गर्मी के दिनों में पा... ज्यादा पीयें इससे लू से बचाव होता है।

✲ सुबह सूर्योदय से पूर्व स्नान करें अ... सर्वप्रथम अपने सिर पर पानी डालें फिर पैरों ... पानी डालें क्योंकि पहले पैरों पर पानी डालने ... पैरों की गर्मी सिर पर चढ़ती है।

✲ सदैव सूती एवं स्वच्छ वस्त्र पहनें। कृत्रि... (सिंथेटिक) कपड़े न पहनें। ये कपड़े जीवनशक्ति... का ह्रास करते हैं।

✲ चौबीस घंटे में केवल दो बार भोजन करें... अगर तीसरी बार करते हों तो बहुत सावधान र... हलका नाश्ता करें।

✲ किसीको वायु और गैस की तकलीफ ज्याद... है तो उसे आलू, चावल और चने की दाल आदि क... परहेज रखना चाहिए। ये वायु करते हैं। वायु का रोग... दूध पीये तो एक-दो कालीमिर्च डालकर पीये।

✲ सामान्य रूप से भी चावल, आलू आदि... ज्यादा न खायें नहीं तो आगे जाकर बुढ़ापे में जोड़... का दर्द पकड़ लेगा। जो बीमारी होनेवाली है, उसर...

बचने के लिए पहले से ही सावधान रहें।

✲ चाय, काफी और नशीली वस्तुओं से बचना चाहिए। आहार ऐसा करो कि आपका शरीर तंदुरुस्त रहे। विचार ऐसे करो कि मन पवित्र रहे।

✲ एक गिलास गुनगुने पानी में थोड़ा 'संतकृपा चूर्ण' एवं शहद डाल दें। मुँह में अदरक का टुकड़ा चबायें, ऊपर से यह शहदवाला पानी पी जायें और थोड़ा घूमें। इससे शरीर का वजन नियंत्रित हो जायेगा।

✲ जिनकी उम्र ४० साल से ज्यादा है उनकी रोग-प्रतिकारक शक्ति बनी रहे इसके लिए 'रसायन चूर्ण' का सेवन करना चाहिए। आँवला, गोखरू एवं दूसरी तीन-चार चीजें मिलाकर 'रसायन चूर्ण' बनता है।

✲ ड्राइवर लोग जानते हैं कि रेल का फाटक आता है अथवा बंपर आता है तो उसके पहले गाड़ी की गति धीमी करनी पड़ती है। ऐसे ही कोई पीड़ा या बीमारी बंपर बनकर आये तो उसके पहले ही अपनी शरीररूपी गाड़ी को नियंत्रित कर लो।

✲ किसीको पित्त की तकलीफ ज्यादा है तो सप्ताह में एक बार पेठे की सब्जी बनाकर खाये और उस दिन थोड़ी अदरक भी खाये ताकि भूख भी लगे।

✲ किसीको भूख नहीं लगती है तो भोजन के पहले अदरक के थोड़े टुकड़ों में नींबू और नमक मिलाकर खाये, बाद में भोजन चबा-चबाकर करे।

✲ रात को हलका भोजन करे और संध्या के बाद जितनी जल्दी हो सके भोजन कर लेना चाहिए।

✲ पंद्रह दिन में एकाध उपवास करें और उपवास के दिन एक-दो सेव को तवे पर सेंककर खायें। प्यास लगे तो एक-दो चुटकी सोंठ गुनगुने पानी में लिया करें।

✲ रात्रि को जल्दी सोना चाहिए और देर रात्रि को भोजन नहीं करना चाहिए। ज्यों-ज्यों सूर्यास्त होता जाता है, त्यों-त्यों जठराग्नि मंद होती जाती है। देर रात्रि को भोजन करनेवाले को मोटापा, थकान और सुस्ती घेर लेती है।

✲ जिस कमरे में सूर्य की रोशनी अच्छी तरह से आती हो उस कमरे में शयन करना चाहिए और रात्रि में सोते हैं तब खिड़की खुली रखें ताकि ताजी हवा ठीक से मिलती रहे।

✲ परिश्रम करनेवालों को कम-से-कम ६ घंटे नींद करनी चाहिए और अधिक-से-अधिक सात घंटे। दिन में ज्यादा सोना नहीं चाहिए। गर्मियों के दिन हैं, बुढ़ापा है अथवा रात्रि को नहीं सो पाये हैं उनके लिए ठीक है। बाकी आम आदमी यदि दिन में सोयेगा तो त्रिदोष बढ़ेगा, मोटापा, थकान, आलस्य और रोग बढ़ेंगे।

✲ रात्रि को सोते समय पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ सिरहाना होना चाहिए। पश्चिम अथवा उत्तर की तरफ सिर रखकर सोने से हानि होती है।

✲ रात को सोते समय थके-माँदे होकर नमक के बोरे की नाईं मत गिरो। जब आप सोने की जगह पर जाते हो तो ईश्वर से प्रार्थना करो कि 'हे प्रभु ! दिनभर में जो अच्छे काम हुए वह तेरी कृपा से हुए प्रभु !' और कुछ गलत काम हो गये तो उस पर नजर डालो एवं प्रार्थना करो कि 'हे प्रभु ! मुझे बचा ले। बुरे कर्म की आदत हो गयी है, वासना हो गयी है। तू बचा ले। आज का दिन जैसा भी गया तेरे चरणों में अर्पण है। कल से कोई बुरे कर्म न हों केवल अच्छे कर्म ही हों... हे प्रभु ऐसे कर्म हों जिनसे तू प्रसन्न हो, तुझमें प्रीति बढ़े, कर्त्ताभाव मिटे, तुझमें शांति मिले और हम तुझसे दूर नहीं, जुदा नहीं इस असलियत का ज्ञान हो जाय ऐसी कृपा करना। ॐ शांति... ॐ शांति... ॐ शांति...' ऐसा करके लेट जायें। श्वास अंदर जाता है शांति, बाहर आता है १, अंदर जाता है ॐ, बाहर आये २, अंदर आनंद या गुरुमंत्र या इष्टमंत्र बाहर ३, इस प्रकार श्वासोच्छ्वास की गिनती करते-करते सो जायें।

मैं सच कहता हूँ आपकी नींद प्रभुमय, शांतिमय योगनिद्रा हो जायेगी और उठोगे तब भी भक्तिमय होकर उठोगे। आज तक आप जैसे उठते थे उससे अलग स्वभाव और मधुरता से उठोगे। फिर सुबह जब उठो तब उस अंतर्यामी से हाथ मिलाकर उठना। 'दायाँ मेरा, बायाँ तेरा... बिन फेरे हम तेरे प्रभु !' इस प्रकार प्रभु से हाथ मिलाना। यह सरल स्वभाव की भगवान की भक्ति बेड़ा तारनेवाली है।

✻ विवाह करें लेकिन संयम से रहें। पूनम, अमावस, एकादशी, जन्मदिवस, श्राद्ध के दिनों में और पर्व तथा त्यौहार के दिनों में संसार-व्यवहार न करें। पत्नी रजस्वला हो, बीमार हो अथवा पति बीमार हो, दोनों में से किसीने व्रत-उपवास किया हो, भूखे पेट हों, तब भी संसार-व्यवहार नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार की बातें पहले लोग गुरुकुल में सीखकर आते थे तो कितने तंदुरुस्त रहते थे। अभी तो दे धमाधम... इतनी अस्पतालें बन रहीं हैं फिर भी घर-घर में बीमारी। अतः स्वस्थ जीवन, सुखी जीवन, सम्मानित जीवन जीने का...

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
मंजिल तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल॥

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम।]

✻

व्यावहारिक जीवन में मंत्रशक्ति

प्राचीन काल से रोगों की प्रकृति एवं चिकित्सा को ध्यान में रखकर आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त किया गया है। इसमें आठवाँ भाग-**'भूतविद्या'** के नाम से जाना जाता है। तंत्र-मंत्र-यंत्र, जप, होम आदि इसके अंतर्गत आते हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि के अनेकों आयुर्वेद शास्त्रों में यंत्र, मंत्र द्वारा चिकित्सा का उल्लेख है।

मंत्रों की सार्थकता के विषय में कहा गया है :

देवाधीन जगत्सर्वं मंत्राधीनाश्च देवता।

अर्थात् देवताओं के अधीन सारा संसार है और ये देवता मंत्रों के अधीन हैं।

मंत्र योगसाधना का ऐसा शब्द व विज्ञान है जिसका उच्चारण करते ही किसी चमत्कारिक शक्ति का बोध होता है। प्राचीन काल के योगी, ऋषि व तत्त्वदर्शी महापुरुषों ने मंत्रबल से पृथ्वी, देवलोक व ब्रह्माण्ड की कई सूक्ष्म शक्तियों पर विजय पायी थी। एक क्षण में किसी का रोग अच्छा कर देना, पलभर में करोड़ों मील दूर की बात जान लेना, अन्य नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त कर लेना ये सब मंत्रशक्ति से साध्य हैं। (क्रमशः)

जो बात दवा से ना होती...

दिनांक : २९ अगस्त २००० को मुझे हलक सा बुखार आया। डॉक्टर को बताने पर उन्होंने मु भर्ती कर लिया किन्तु उपचार सफल न होने अस्पताल से छुट्टी दे दी। उसके बाद दो अ अस्पतालों में भर्ती रहा, काफी इलाज करने पर खून नहीं बन रहा था। १० सितंबर को एक वै को दिखाया। वैद्य ने कहा : 'पीलिया है, ठीक जायेगा।' किन्तु १५ दिन के इलाज के बाद भी को फर्क न पड़ा।

पुनः एक अन्य अस्पताल में भर्ती हुआ, मग वहाँ पर भी नतीजा कुछ न निकला। अंत में मुंबई एक प्रसिद्ध अस्पताल में भर्ती हुआ। खून की पाँ बोतलें चढ़ाईं परन्तु वह भी पानी बन गया। पाँ हजार रुपये का एक इंजेक्शन दिया गया, फिर भ फर्क न पड़ा। तब डॉक्टरों ने सलाह दी : 'अब आ अपने रिश्तेदारों व परिजनों को बुला लो। अपन हिसाब-किताब बीबी-बच्चों को बता दो। हमा हिसाब से कोई कोशिश बाकी नहीं है और कोई आश नहीं दिखती। आँतों में गाँठ की वजह से कैंसर ह गया है जिसके कारण खून पानी बनता जा रहा है।' ये बयान एक नहीं, बल्कि अस्पताल के तीन-तीन डॉक्टरों के थे।

मुझे मृत्यु निकट दिखाई देने लगी। दिन-रात में फर्क नहीं मालूम पड़ता था, परंतु मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि पूज्य गुरुदेव आशीर्वाद की मुद्रा में दाहिना हाथ ऊपर उठाये हुए कह रहे हैं : 'बेटा! तेरा प्रारब्ध है पर कुछ नहीं होगा। तू चिंता मत कर, थोड़ा भगवद्चिंतन कर।'

मैंने अपनी पत्नी को यह बात बताई। पत्नी एक साधक भाई को लेकर २५ अक्टूबर को दिवाली शिविर में पूज्य बापू के दर्शन व आशीर्वाद की उम्मीद से मुंबई (बांद्रा) से अमदावाद के लिए रवाना हो गयी। पत्नी ने पूज्यश्री के दर्शन किये, बड़बादशाह के फेरे किये, प्रसाद लिया और आश्रम के वैद्यराज से दवा ली। प्रसाद व दवा लेने से मेरी हालत में चमत्कारिक लाभ हुआ और अस्पताल के डॉक्टरों ने बताया कि आपके साथ कुछ चमत्कार हो गया है क्योंकि आपके शरीर में खून बनना शुरू हो गया है। आज मैं पूर्णरूप से स्वस्थ हूँ। सच ही है :

जो बात दवा से नहीं होती, वो बात दुआ से होती है।
जब कामिल मुर्शिद मिलते हैं, तो बात खुदा से होती है॥

पूज्य बापू के श्रीचरणों में सपरिवार कोटि-कोटि नमन।

- सत्यनारायण यादव
दूरसंचार अधिकारी, घाटकोपर, मुंबई।

* जिस प्रकार सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त मनुष्य वृक्ष की शीतल छाया में और दिनभर की गर्मी के बाद शीतल चाँदनी में असीम आनन्द की अनुभूति करता है उसी प्रकार संसार की प्रखर किरणों से जला हुआ और शांति के लिए व्याकुल बना हुआ मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ गुरु के चरणों में इच्छित शांति और आनन्द की अनुभूति करता है।

(आश्रम द्वारा प्रकाशित 'पंचामृत' पुस्तक से)

पूज्य बापूजी के आगामी सत्संग

* गाँधीनगर (गुजरात) में ध्यान योग शिविर, १२ से १४ जनवरी २००२, सेक्टर-११, एस. टी. डिपो के पीछे, फोन : (०७९) ७५०५०१०, ३२३५०९७, ३२२८४१६.

शिविर स्थल अमदावाद से २५ कि.मी. है। रेलवे स्टेशन व बस अड्डे से बस सुविधा उपलब्ध रहेगी।

* नागपुर में ज्ञान-भक्ति-योग सत्संग वर्षा, २६ से २८ जनवरी २००२, रेशम बाग मैदान, नागपुर। पूर्णिमा दर्शन २८ जनवरी। फोन : (०७१२) ६६७२६७, ६६७२६८.

नवा वाडज, अमदावाद (गुज.) : वर्षों से सत्संग हेतु प्रतीक्षारत भक्तों की प्रार्थना फली और ३० नवंबर से २ दिसंबर त्रिदिवसीय सत्संग समारोह का भव्य आयोजन हुआ। औद्योगिक नगरी अमदावाद हरिरस से सराबोर हो गयी। गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने सहयोगी मंत्रियों सहित सत्संगामृत का पान किया। श्री मोदी पुराने जिज्ञासु साधक हैं। उन्होंने करीब २५-३० बार पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग व सान्निध्य का लाभ लिया है। पूज्यश्री ने सत्संग में कहा : ''**शस्नाति इति शास्त्रः**। अर्थात् जो संयम व शासन का मार्ग बताये वह 'शास्त्र'। इन शास्त्रों का अनादर व उनकी आज्ञा के उल्लंघन से आज का मानव-जीवन तनावग्रस्त हो गया है। आज का मानव-जीवन सज्जनता व सहानुभूति, संयम व कर्त्तव्यनिष्ठा की जगह उच्छृंखल एवं राग-द्वेषयुक्त हो गया है।'' ३० नवंबर को देश के विभिन्न भागों से आये हुए हजारों पूर्णिमा व्रतधारियों ने दर्शन एवं सत्संग से सुखमय-आनंदमय जीवन की नयी-नयी कुंजियाँ प्राप्त की। पूज्यश्री के आध्यात्मिक उपदेशों एवं जीवन में आनन्द-रस भरनेवाले नित्य नूतन प्रयोगों से श्रद्धालु भक्तजनों ने आत्मसिंधु की झलकों का अनुभव किया। तुलसीदासजी का तो उनके गाँव के लोग लाभ न ले सके पर यहाँ का जनसैलाब देखते हुए लग रहा था कि जिस अमदावाद में पूज्य बापूजी पढ़े-लिखे, खेले-खाये उसी अमदावाद में इतना आदर-सम्मान... इतनी कुंभ मेले जैसी भीड़ ! इस आत्मारामी संत के अनुभवयुक्त वचन के श्रवण व प्रत्यक्ष दर्शन के लिए उमड़ी भीड़ से लगा कि अमदावाद की जनता ने पूज्य बापूजी की ब्रह्मनिष्ठता को पहचानकर उनके भक्ति, योग व ज्ञान की त्रिसरिता का खूब लाभ लिया।

पुष्कर (राज.) : ६ से १४ दिसंबर तक पूज्य बापूजी पुष्कर के सुरम्य प्राकृतिक वातावरण में एकांत विश्रांति के लिए विराजे। यहाँ शाम को पूज्यश्री के दर्शन होते व उनकी ब्रह्मसुख से संपन्न वाणी भी थोड़ी देर सुनने को

मिल जाती थी। अजमेर व आस-पास के भक्तों की भगवद्भावना पुष्ट होती गयी। इसके बाद पूज्यश्री ने भीलवाड़ा के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में पहले आता है नसीराबाद। यहाँ के भक्तों ने खूब उत्साह से अगम-निगम के इस औलिया के दर्शन हेतु राजमार्ग पर सत्संग पंडाल बनाया। उनकी कीर्तन-सत्संगयुक्त प्रतीक्षा फली।

पूज्यश्री के दर्शन से भक्तों में आंतर का सुख उभरा। सब गद्गद हुए। बड़ी शिस्त, बड़ा संयम... इतनी भीड़ में भी न धक्का-धकी, न चरणस्पर्श की होड़, न विक्षेप... आदर से प्रेमपूर्ण दर्शन एवं सत्संग रसपान हुआ।

रायला (राज.) : रायला समिति ने भी इस स्वर्णिम अवसर का पूरा लाभ लिया। सत्संग-भवन के उद्घाटन का निमित्त बनाकर समिति ने अपने क्षेत्र की जनता को सायं ४ से ५.३० तक इस सत्पुरुष के दर्शन-सत्संग का लाभ दिलाया। भीलवाड़ा पहुँचते-पहुँचते और भी छोटे-मोटे कई स्थानों पर लोगों ने पुण्यमय आरती, फूलहार अर्पितकर पूज्यश्री का दर्शन पाया।

मांडल (राज.) : मांडल समिति की वर्षों की तपस्या फली। पूज्यश्री के करकमलों द्वारा यहाँ के सत्संग-भवन का उद्घाटन हुआ। रायला की तरह इनको भी डेढ़ घंटे पूज्य बापूजी के दर्शन व सत्संग का लाभ मिला। फिर क्या कहना ? उमड़ा भक्तों का जनसैलाब तथा बरसी भगवत्रस वर्षा...

भीलवाड़ा (राज.) : यहाँ १५ से १७ दिसंबर को आयोजित ज्ञानयज्ञ में पूज्य बापूजी ने कहा : ''जिनके जीवन में सत्संग नहीं हैं उनका जीवन बिना स्टेयरिंग की गाड़ी जैसा है। अतः मंगलमय जीवन के लिए सत्संग अनिवार्य है।'' उपस्थित विशाल जनसमूह पूज्यश्री के ब्रह्मसुख से ओतप्रोत वाणी का अवगाहन करके कृतकृत्य हो गया। भीलवाड़ा आश्रम में पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा कल्पवृक्ष (बड़दादा) भी लगाया गया।

नाथद्वारा : १७ दिसंबर की शाम को यहाँ पूज्यश्री ने नवनिर्मित सत्संग-भवन का उद्घाटन किया। अल्प समय में समिति द्वारा बड़े उत्साहपूर्वक व्यवस्था की गयी। पूज्यश्री ने कहा : ''समाज के हित में समिति द्वारा किया गया यह कार्य प्रशंसनीय है। धनभागी हैं वे लोग जो अपने-तन-मन-धन को ईश्वरप्राप्ति में लगाते हैं। आत्म-प्रसाद, आत्मिक शांति से ही मनुष्य के सारे दुःख नष्ट हो सकते हैं, अद्वैत शाश्वत स्वरूप की पहचान हो जाती है।''

भावपूर्ण हृदय, अश्रुपूर्ण नेत्रों तथा कृतज्ञतापूर्ण उद्गारों से आप्लावित अभिनंदन-निवेदन को स्वीकार करते हुए पूज्यश्री ने उदयपुर के लिए प्रस्थान किया।

उदयपुर : १८ दिसंबर को अपने सरल सारगर्भित सत्संग में संतप्रवर पूज्य बापूजी ने कहा : ''आत्मशांति पाना ही सार है और आत्मसंयम के बिना सफलता की कामना व्यर्थ है। मिले हुए समय, शक्ति तथा योग्यता का उपयोग संयम से करना ही उन्नति का मूल मंत्र है।'' देश की वर्त्तमान परिस्थिति तथा भविष्य के प्रति साधकों को सावधान करते हुए पूज्यश्री बोले : ''समय प्रतिकूल है। अतः, अभी साधकों को विशेष रूप से जप-ध्यान करना चाहिए। यदि विघ्न-बाधाएँ आयें तो धैर्यपूर्वक उनका सामना करें। जो साधक जीवन में विलक्षणता लाना चाहते हैं उन्हें मौन मंदिर-साधना करनी चाहिए।''

मोड़ासा, बायड़, लूणावाड़ा के भक्तों ने पूज्य बापू के दर्शन हों इस हेतु 'श्रीआसारामायण' के पाठ किये। उनकी मनोकामना फली, बिना कार्यक्रम के ही उनको पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग का लाभ मिला। **१०८ जो पाठ करेंगे उनके सारे काज सरेंगे**, हजारों-हजारों लोगों ने इसका अनुभव किया।

वणाकबोरी, थर्मल (गुज.) : २० से २२ दिसंबर के त्रिदिवसीय सत्संग में आस-पास के १०० कि.मी. के क्षेत्रों से उमड़ी भीड़ इस औलिया के दर्शन से हुलसित व आनंदित हुई। पुण्यात्मा लोग पावन पुरुषों को पहचान लेते हैं। इस अलख पुरुष को प्रीतिपूर्वक सुनने व नजदीक से दर्शन करने हेतु लम्बी-लम्बी कतारें और इसमें दुकानदार भी पीछे क्यों रहें ? पूरा बाजार बंद रहा। धनभागियों ने सत्संग-दर्शन से ईश्वरीय मस्ती का अमृतपान किया व अपने दिल में दिलबर की झलकें पायीं। सत्संग में इतना जनसैलाब उमड़ा कि समिति की सारी व्यवस्थाएँ, कल्पनाएँ किनारे रह गयी। समिति का सुप्रयत्न और सुयश चारों ओर फैल गया। धन और राजसत्ता से बड़े कहलानेवाले भी इतने बड़े सत्कर्म नहीं कर पाते जो सच्चे सत्संगी और श्रद्धालुओं द्वारा सहज में हो जाता है। गुरुमंत्र जापक वे साधक धनभागी हैं जिन्होंने सद्गुरु से दीक्षा पायी व समाज के कल्याण की शिक्षा पायी और ऐसी सेवाएँ कर दिखाई।

८ वर्षों की फली प्रार्थना : भीलवाड़ा में भाग्यशालियों ने पाया प्रभुरस का अनुठा आनन्द,
जीवन-उद्धारक, आत्म-अनुभव सम्पन्न संतश्री की सत्संग सरिता में ।

थर्मल वणांकबोरी, (जि. खेड़ा, गुज.) में आयोजित सत्संग में पूज्यश्री के अमृतवचन अपने हृदय में संजोते हुए भक्तगण ।

(बाँये से :) श्री नरहरि अमीन (विधायक), श्री प्रवीण तोगडिया (वि.हि.प.), श्रीमती आनंदीबहन पटेल (शिक्षा मंत्री, गुज.), श्री अशोक भट्ट (आरोग्य मंत्री, गुज.), श्री नरेश रावल (विपक्ष नेता, गुज.), श्री नरेंद्र मोदी (पूर्व के सुसंस्कारी साधक व वर्तमान में मुख्यमंत्री, गुज.)

आठ साल के अंतराल के बाद वाडज अमदावादवासियों को घर बैठे मिला पूज्य बापू का ज्ञानामृत।

तपःसु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः। एकाग्रता से सफलता मिलती है। एकाग्रता बढ़ाने के लिये, वाडज (अमदावाद) के सत्संग में यौगिक क्रियाएँ सीखते हुए होनहार छात्र-छात्राएँ।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2002. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2002 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2002 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2002 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.